वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५
विवेक ज्योति
वर्ष ५६ अंक १० अक्टूबर २०१८
रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥
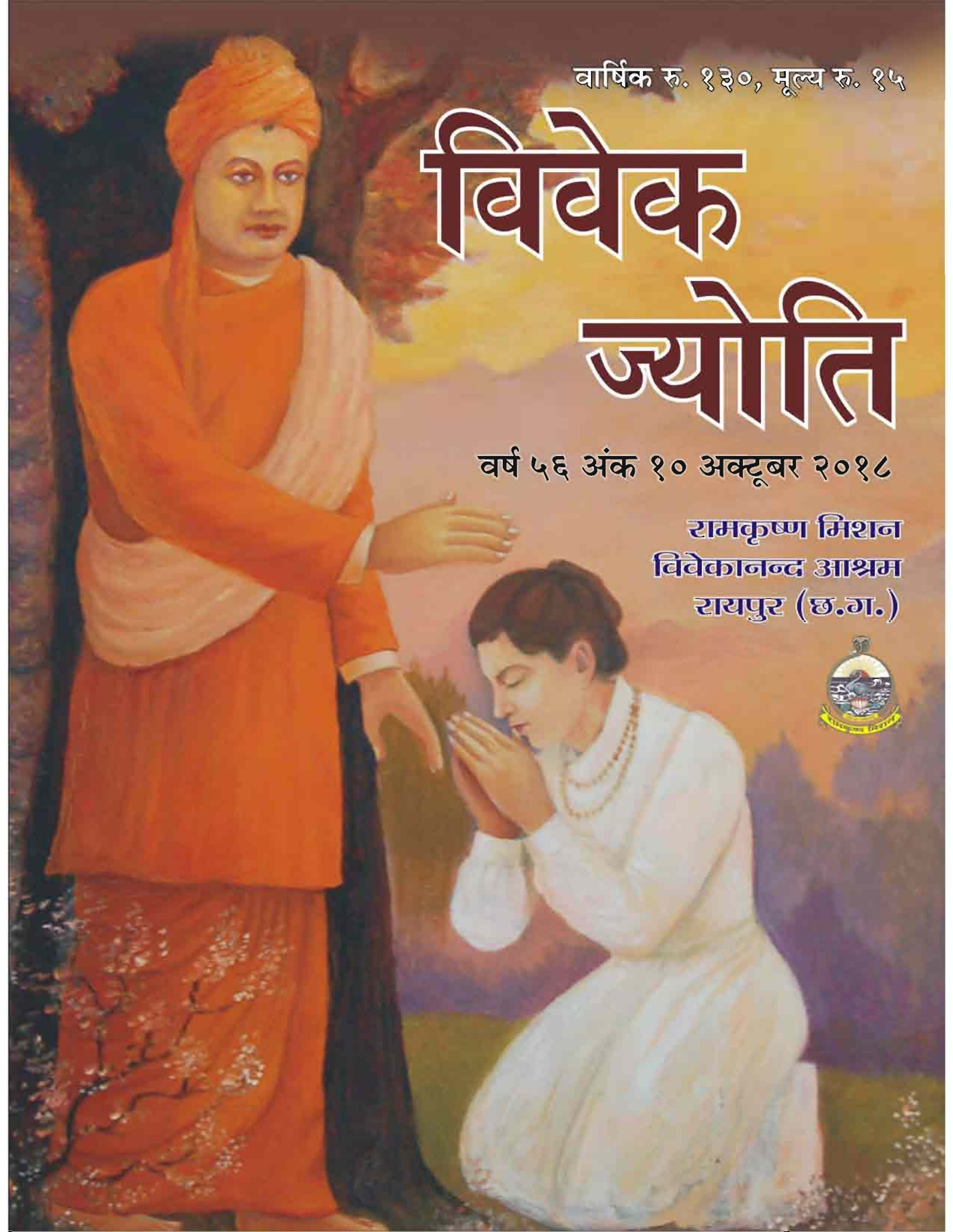
विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अक्तूबर २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक १०

वार्षिक १३०/- **एक प्रति १५/-**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/-
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/-
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/- ; ५ वर्षो के लिये – रु. ८५०/-

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

अक्तूबर माह के जयन्ती और त्योहार

०२	गाँधी जयन्ती
०३	स्वामी अभेदानन्द
०९	स्वामी अखण्डानन्द
१७	दुर्गा पूजा (महाष्टमी)
१९	विजयादशमी

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

इस चित्रांकन में स्वामी विवेकानन्द जी अपनी शिष्या भगिनी निवेदिता को आशीर्वाद दे रहे हैं। भगिनी निवेदिता का जन्म इस महीने की दिनांक २८ को है। यह आवरण-पृष्ठ उनकी स्मृति में निवेदित है।

विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : www.rkmraipur.org

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री लोकेश डी नावाणी, गाँधीधाम, कच्छ (गुज.)	१,०००/-
श्री धरमवीर सेठ, सहस्त्रधारा रोड, देहरादून (उ.ख.)	४,६००/-
श्री नुनिया राम मास्टर, चंडीगढ़	५,०००/-
श्री देवराज पुरोहित, झारसुगड़ा (ओडिशा)	११००/-

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५१०. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर (छ.ग.)	शासकीय महाविद्यालय, दुर्गकोंदल, वाया-भानुप्रतापपुर, कांकेर
५११. श्री आशुतोष जोशी, तलेगाँव दाभाडे, पुणे (महाराष्ट्र)	शासकीय महाविद्यालय, मु.पो.-तोकापाल, जिला-बस्तर (छ.ग.)
५१२. श्री दयालदास सी नावाणी, गाँधीधाम, कच्छ (गुज.)	इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सिंधोलॉजी, आदिपुर, कच्छ (गुजरात)
५१३. श्री अनुराग, स्व. श्रीरामराज,स्व. श्रीमती उषा प्रसाद, कोलकाता	गवर्नमेंट संजय गाँधी मेमोरियल कॉलेज, सीधी (म.प्र.)
५१४. ,, ,,	कलागुरु विष्णूराभा डिग्री कॉलेज, ओरांग, उदालगुड़ी (असम)
५१५. ,, ,,	गवर्नमेंट पी.जी. कॉलेज, मु.पो.-धर्मशाला, कांगड़ा (हि.प्र.)
५१६. ,, ,,	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक कॉलेज, कोटकपुरा, फरीदकोट (पंजाब)
५१७. ,, ,,	एम.बी.डी. गवर्नमेंट कॉलेज, कुशलगढ़, बांसवाड़ा (राज.)
५१८. ,, ,,	शा. लोचन प्रसाद पांडे महाविद्यालय, सारंगगढ़, रायगढ़ (छ.ग.)
५१९. ,, ,,	पुब कामरूप कॉलेज, बाइहाटा चारिआली, जि.-कामरूप (असम)
५२०. ,, ,,	राजीव गाँधी गवर्नमेंट इंजीनियरिंग कॉलेज, नगरोटा बंगवां (हि.प्र.)
५२१. ,, ,,	गवर्नमेंट पॉलीटेक्नीक, गुरु तेग बहादुरगढ़, मोगा (पंजाब)
५२२. श्री दीपक सुन्दरानी, देवेन्द्र नगर, रायपुर (छ.ग.)	इंस्टीट्यूट ऑफ मैनेजमेंट, निरमा यूनिवर्सिटी, गाँधीनगर (गुज.)

वर्ष ५६ **अक्तूबर २०१८** **अंक १०**

दुर्गा-ध्यानम्

ॐ कालाभ्राभां कटाक्षैररिकुलभयदां मौलिबद्धेन्दुरेखां
शङ्खं चक्रं कृपाणं त्रिशिखमपि करैरुद्वहन्तीं त्रिनेत्राम् ।
सिंहस्कन्धाधिढां त्रिभुवनमखिलं तेजसा पूरयन्तीं
ध्यायेद् दुर्गां जयाख्यां त्रिदशपरिवृतां सेवितां सिद्धिकामैः ।।

– सिद्धि के इच्छुक पुरुष जिनकी सेवा करते हैं और देवता जिन्हें चारों ओर से घेर कर खड़े रहते हैं, उन 'जया' नामक दुर्गा देवी का ध्यान करें, जिनकी अंग-कान्ति काले मेघ सदृश है, जिनके कटाक्ष से शत्रु भयभीत होते हैं, जिनके मस्तक पर चन्द्र-रेखा सुशोभित है, जो अपने हाथों में शंख, चक्र, कृपाण और त्रिशूल धारण करती हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जो सिंह के कन्धे पर सवार हैं और जिनका तेज तीनों लोकों में व्याप्त है ।

पुरखों की थाती

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसः नामापि न श्रूयते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते ।
स्वात्यां सागरशुक्ति संपुट्गतं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तम गुणाः संसर्गतो देहिनाम् ।।६१४।।

– तपे हुए लोहे पर पानी की बूँद पड़ने से उसका नामो-निशान तक मिट जाता है; वही बूँद यदि कमल के पत्ते पर पड़े, तो वह मोती के समान शोभित होती है और स्वाति नक्षत्र में वही अगर सीपी के मुख में पड़ जाय, तो उससे मोती बन जाता है। इस प्रकार देखने में आता है कि मनुष्यों में संगति के अनुसार अधम, मध्यम या उत्तम गुणों का विकास होता है।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्नि-निर्वापणं
श्रेयःकैरव-चन्द्रिका-वितरणं विद्यावधू-जीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ।।६१५।।

– जो चित्तरूपी दर्पण को स्वच्छ करता है, जो भवरूपी महा-दावानल को बुझाता है, जो मुक्तिरूपी श्वेतपद्म पर चाँदनी बिखेरता है, जो पराविद्या-रूपी वधू का प्रियतम है, जो प्रतिक्षण आनन्दरूपी सागर में ज्वार लाकर पूर्णामृत का आस्वादन करानेवाला है, जो सम्पूर्ण आत्मा को शुद्ध करनेवाला है, उस परम श्रीकृष्ण-संकीर्तन की जय हो।

(चैतन्यदेव 'शिक्षाष्टकम्')

विविध भजन

जय माँ सारदा रामदुलारी

स्वामी रामतत्त्वानन्द

जय माँ सारदा रामदुलारी
शरणागत प्रतिपालनहारी ।।
दीन-हीन सब आश्रय पाये,
माँ कह जो इक बार पुकारी ।
जग ज्वाला से व्यथित हृदय पर,
ममता का आँचल पसारी ।।
जय माँ सारदा रामदुलारी ...
तुम ही केवल मात्र सहारा,
सुन जननी अब आर्त हमारी ।
यह अकिंचन है दास तुम्हारो,
सींचो माँ ममता की वारी ।।
जय माँ सारदा रामदुलारी ...

माँ तुम आओ

माँ आओ माँ आओ माँ तुम आओ ।
हृदय-पद्म में विराजो, माँ तुम आओ ।।
ज्ञान नहीं मुझे भक्ति नहीं मुझे,
तुम्हें पाने की शक्ति की नहीं मुझे ।
अनाथों की तुम सहारा,
माँ तुम आओ ...
बँधा हुआ मन माया पाश से,
जल रहा तन भव ताप से ।
स्नेहधारा से मैया ताप बुझाओ,
माँ तुम आओ ...
छुपो न जननी, रूठो न जननी,
टूट रहा मन, छोड़ो न जननी,
मेरे मन को माया में अब न बहलाओ,
माँ तुम आओ...

मेरी मातु जानकी

गोस्वामी तुलसीदासजी

कबहुँ समय सुधि द्यायबी,
मेरी मातु जानकी ।
जन कहाई नाम लेत हौं,
किये पन चातक ज्यों,
प्यास प्रेम पान की ।।
सरल कहाई प्रकृति आपु
जानिये करुना निधान की ।
निज गुन अरिकृत अनहितौ,
दास-दोष सुरति चित
रहत न दिये दान की ।।
बानि बिसारनसील है मान अमान की,
तुलसीदास न बिसारिये,
मन करम बचन जाके,
सपनेहुँ गति न आन की ।।

हे भगवान मेरी सुन विनती

बाबूलाल परमार

हे भगवान मेरी सुन विनती ।
सुना है मैंने सुनी है सबकी, विनती अनगिनती ।।
मैं एक से सौ तक तेरे नाम की लगा रहा गिनती ।
मेरी भी सुन ले जैसे सुनी है, और जिन-जिन की ।।
हे भगवान मेरी सुन विनती ...
पता लगा है मुझे भी यह कि तु सुनता किन-किन की ।
जो तेरे नाम का सुमिरन करता, तू सुनता उन-उन की ।।
हे भगवान मेरी सुन विनती ...
बाबूलाल की विनती केवल गुरु-नाम धुन की ।
सुन लेना दीन-दयाल प्रभु सेवक के मन की ।।
हे भगवान मेरी सुन विनती ...

सम्पादकीय

श्री दुर्गानाम भूलो ना

दुर्गापूजा भारतीय जन-मानस का अभिन्न और अपरिहार्य अंग है। प्रत्येक आस्तिक परिवार में शक्तिरूपिणी माँ दुर्गा आश्विन के मास में सब प्रकार की प्रसन्नता, मंगलता और सुख-शान्ति लिये प्रकट होती हैं। पश्चिम बंगाल में दुर्गा की कन्या के रूप में आराधना का अधिकांश प्रचलन है। मानो पुत्री अपने ससुराल से मायके में आ रही है। इससे सम्बन्धित बहुत से लोकगीत प्रचलित हैं। एक गीत में महारानी सुनयना अपने पति से कहती हैं – 'जाओ जाओ गिरि आनिते गौरी, उमा नाकि बड़ो केंदेछे... – हे गिरि! गौरी को लेने जाइये, मैंने स्वप्न में देखा है कि उमा बहुत रो रही है।' दुर्गापूजा के एक महीना पहले ही आगमनी के गीत प्रारम्भ हो जाते हैं – 'गिरि गणेश आमार शुभकारी'। उत्तर भारत में दुर्गा की उपासना शक्तिरूपिणी माँ के रूप में की जाती है। भक्तगण लोकगीतों और अन्य भजनों के द्वारा माँ से विभिन्न प्रकार की रक्षा और सुख-समृद्धि की कामना करते हुए उनकी महिमा का वर्णन करते हैं। उनकी अतुल्य शक्ति और पराक्रम का जयगान करते हैं। शक्तिपीठों और मातृसिद्धपीठों में भक्तवृन्द माँ के दर्शन की एक झलक पाने के लिये 'जगजननी का मन्दिर में मचेला हाहाकार' 'जगजननी जय जय' आदि गीत गाते हुये घंटों खड़े रहते हैं। जैसे ही एक झलक माँ की मिलती है, चित्त में अद्भुत प्रसन्नता और शान्ति लिये वापस आते हैं। ग्रामीण मातायें 'निमिया के डाढ़ मैया खेलेली हिंडोलवा से झूली रे झूली ना' आदि अनेक लोकगीतों को गाते हुये माँ की पूजा के लिये मन्दिर में जाती हैं।

उच्च साधकवृन्द माँ दुर्गा की उपासना, प्रार्थना-अर्चना, विभिन्न सम्पुट पाठों, मन्त्र-जप और ध्यान के द्वारा करते हैं, अपनी अभीष्ट सिद्धि हेतु कठिन अनुष्ठानादि करते हैं। कहा जाता है कि नवरात्रि में दुर्गा माता की विशेष शक्ति प्रकट होती है और सामान्य साधक को भी अल्प साधना से ही मनोवांछित सिद्धि मिल जाती है।

इसलिये माँ दुर्गा की पूजार्चना और नाम-स्मरण का अधिक महत्त्व शास्त्रों में प्रसिद्ध है। कहते हैं –

दुर्गे दुर्गेति दुर्गाया दुर्गे नाम परम हितम्।
यो भजेत् सततं चण्डीं जीवन्मुक्तः स मानवः।।

– जो मानव परम हितकारी 'दुर्गा' नाम का स्मरण-भजन करता है, वह जीवन्मुक्त हो जाता है।

जो माँ दुर्गा सारे प्राणियों का दुखहरण करती हैं, सबका दुखनाश करती हैं, उनकी प्राप्ति के सम्बन्ध में दुर्गासप्तशती में वर्णन है, जो उनके 'दुर्गा' नाम की सार्थक व्याख्या भी है। 'दुर्गा' शब्द की व्याख्या करते हुये कहते हैं – **दुःखेन अष्टाङ्गयोग-कर्मोपासनारूपेण क्लेशेन गम्यते प्राप्यते या सा दुर्गा।** अर्थात् जो अष्टांगयोग, कर्म एवं उपासना रूप दुःसाध्य साधन से प्राप्त होती हैं, वे जगदम्बिका दुर्गा कहलाती हैं। माँ के नाम की ऐसी अद्भुत महिमा है! कई भक्तों ने कठिन स्तोत्र-वाचन और साधना में असमर्थ होने पर अपनी लोकभाषा में ही माँ से प्रार्थना की, जिसमें दर्शन की व्याकुलता और दुख-मुक्ति की विकलता दृष्टिगोचर होती है। एक भक्त माँ से प्रार्थना करता है –

मेरी करुणामयी माँ! मैं तेरी अज्ञानी सन्तान हूँ। मैं तुम्हारा प्रत्यक्ष दर्शन और तेरे दिव्य चिन्मय स्वरूप की हृदय में अनुभूति करना चाहता हूँ। अपने अन्तःकरण में तुम्हारी दिव्य सत्ता की अनुभूति हेतु विविध उपासनाओं की प्रक्रियाओं और नियमादि की विषयादि से कलुषित मेरी क्षुद्र बुद्धि धारणा नहीं कर पाती। ऋषि-मुनियों द्वारा पूजित, वन्दित, आराधित तेरे अर्चा-विग्रह रूप की हमारी अशुद्ध भ्रमित बुद्धि धारणा नहीं कर पाती। मेरा विषयानुधावी चंचल मन तेरी उपासना में नियमानुष्ठानादि में स्थिर नहीं हो पाता। उन्मत्त चंचल प्रमादी असार संसार में सार के अनुसन्धान में व्यर्थ भटकता हुआ मेरा मन तुम्हारे उस पूज्य भव्य दिव्य रूप में एकाग्र नहीं हो पाता।

किन्तु हे मेरी करुणामयी माँ! मेरे प्राण तुम्हारे सुखप्रद,

त्राणकारक क्रोड़ हेतु विकल रहते हैं। प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, अन्तर्बाह्य रणांगण में वीरतापूर्वक संघर्ष करने हेतु रणभूमि में भी तेरी अमर गोद, अभय वरदहस्त और विषय-बाण से संरक्षक तेरे कवच-आँचल की आकांक्षा मेरा कृतघ्न मन करता है।

हे माँ! जब बाह्यत: चारों ओर से सुरक्षित साधना के गह्वर में मेरा चित्त-चकोर तेरे दर्शन की आस में कृपाभिलाषी एकाग्र होकर टकटकी लगाए हृदय-गगन में ऊर्ध्व दृष्टि से तेरी ओर देखता रहता है, जब स्नेहवश तुम मुझे अपनी कृपावृष्टि हेतु अपने पास खींचने लगती हो, तब अज्ञानतावशात् मेरे ही जन्म-जन्मान्तरों के संचित संस्कार मेरे प्रबल शत्रु बनकर तुमसे मिलने से रोकते हैं, मेरे चाहने पर भी ये मुझे तुमसे मिलने नहीं देते, मुझे तरह-तरह की यातनाएँ देते रहते हैं। मैं विवश हो जाता हूँ। हे माँ! क्या तुम अपनी इस अधम विवश सन्तान पर कृपा नहीं करोगी? क्या तुम दर्शन देकर इस महान संकट से मेरा उद्धार नहीं करोगी?

माँ तुमने अपनी सन्तानों का कितनी बार संकटों से उद्धार किया है, मेरा उच्छृंखल मन भी तेरी इस अपार करुणा का बारम्बार स्मरण कर भाव-विभोर हो जाता है। मुझ पर कृपा करो माँ!

जब ऐसी आन्तरिकता और व्याकुलता के साथ भक्त माँ से प्रार्थना करता है, तब माँ की कृपा-वायु प्रवाहित होने लगती है। त्रैलोक्यनाथ सान्याल ने अपने मनोभावों को बड़ी विकलता से अपने एक गीत में व्यक्त किया है –

निरवधि अविचारे कत भालोबासो मोरे।
उद्धारिछो बारेबारे पतितोद्धारिणी।।

– "माँ! तुम मुझे सदा निष्कारण कितना प्रेम करती हो! हे पतितोद्धारिणी! तुमने बार-बार संकटों से मेरा उद्धार किया है।"

माँ! जब तुम इतनी वात्सल्यमयी हो, तो मुझ पर भी अपनी कृपाघन की वृष्टि कर कृतार्थ कर दो न! माँ मैं जैसा भी हूँ तेरा हूँ। तेरे शरणागत हूँ! जब शोकानुतप्त होकर करुण क्रन्दन अन्त:करण से हुआ, तो मातृभक्त रामप्रसाद सेन के उपदेशात्मक भजन की याद आई, जिसमें दुखरक्षक दुर्गा-नाम लेने का सतत परामर्श और दुर्गा-नाम-महिमा का वर्णन है –

श्रीदुर्गानाम भूलो ना, भूलो ना भूलो ना भूलो ना।
श्रीदुर्गा स्मरणे समुन्द्र मन्थने विषपाने विश्वनाथ मलो ना।।
यद्यपि कखनो विपद घटे श्रीदुर्गा स्मरण करियो संकटे,
ताराय दिये भार सुरथ राजार लक्ष असिघाते प्राण गेलो ना।।
विभु नामे एक राजा छेले यात्रा कोरे छिलो श्रीदुर्गा बले।
आसिबार काले समुद्रेर जले डुबेछिलो तबु मरण होलो ना।।

भक्तकवि कहते हैं – "श्रीदुर्गा का नाम कभी मत भूलो। श्रीदुर्गा का स्मरण करने से समुद्र-मन्थन में प्राप्त विष को पीने से भी शंकरजी की मृत्यु नहीं हुई। यदि जीवन में कभी संकट आये, तो दुर्गा-नाम का स्मरण करो। माँ को भार सौंपने पर लाख बार खड्ग के वार से भी सुरथ राजा के प्राण नहीं गये। विभु नामक एक राजपुत्र ने श्रीदुर्गा का नाम लेकर यात्रा की थी। वापस आते समय समुद्र में डूबने पर भी उसकी मृत्यु नहीं हुई।"

जगज्जननी माँ दुर्गा भक्तों का भौतिक दुख-नाश करती हैं, आध्यात्मिक प्रकर्ष करती हैं और अपने दिव्य रूप का दर्शन देकर मुक्ति प्रदान करती हैं। तभी तो मार्कण्डेय ऋषि अर्गलास्तोत्र में प्रार्थना करते हैं –

विधेहि देवि कल्याणं विधेहि परमां श्रियम्।

– हे देवि! हमारा परम कल्याण करो। हमें परम सम्पत्ति प्रदान करो।

इन्द्रादि देवता देवि से अभ्यर्थना करते हैं –

सर्वभूता यदा देवी स्वर्गमुक्तिप्रदायिनी।...
सर्वस्य बुद्धिरूपेण जनस्य हृदि संस्थिते।
स्वर्गापवर्गदे देवि नारायणि नमोऽस्तुते।।

– हे देवि! तुम स्वर्ग तथा मोक्ष प्रदान करनेवाली हो। ... हे बुद्धिरूप में सबके हृदय में विराजित, स्वर्ग एवं मोक्ष प्रदान करनेवाली नारायणी देवि! तुम्हें नमस्कार है।

दुर्गम दुस्तर विकट भव-दुखविनाशिनी माँ दुर्गा के आवाहन एवं पूजन हेतु भगवान शंकर के मुखारविन्द से नि:सृत यह मन्त्र आज भी असंख्य लोगों को शान्ति प्रदान कर रहा है –

दुर्गमे दुस्तरे कार्ये भवदु:खविनाशिनीम्।
पूजयामि सदा भक्त्या दुर्गे दुर्गतिनाशिनीम्।।

दुर्गापूजा के पावन अवसर पर माँ की आराधना कर सभी लोग भवदुखों से मुक्त हो आनन्द-मंगल की प्राप्ति करें, यही श्रीमाँ दुर्गा के चरणारविन्दों में प्रार्थना है। OOO

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२२)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

२८ जून, मिस मैक्लाउड को –

मद्रास में काफी उत्तेजना फैली थी। बहुत-से लोगों ने गवर्नर से अनुरोध किया था कि स्वामीजी को उतरने दिया जाय। परन्तु प्लेग को ध्यान में रखते हुए हमें जहाज में ही रहना पड़ा और इससे मेरे मन को राहत ही मिली, क्योंकि समुद्र-यात्रा उनके स्वास्थ्य को काफी लाभ पहुँचा रही थी और एक दिन की भीड़-भाड़ तथा व्याख्यान भी उन्हें काफी थका देते। लोग उपहारों तथा अभिनन्दन-पत्रों के साथ नावों में भर-भरकर निरन्तर जहाज के निकट आ रहे थे और दिन-भर जहाज से नीचे उनकी ओर सौजन्यतापूर्वक देखते रहना भी कम थकाऊ नहीं था। ...

मद्रास में स्वामीजी के साथ कोलम्बो जाने के लिये आलासिंगा जहाज में सवार हुए, इसलिये स्वामीजी सारे समय बड़े आनन्दपूर्वक अपने केबिन में ही हैं। ये तीनों (स्वामीजी, तुरीयानन्द तथा आलासिंगा) एक साथ ही भोजन आदि करते हैं; अत: मैं मेज पर अकेली ही बैठती हूँ और अन्य लोगों के साथ थोड़ी-बहुत परिचित होती जा रही हूँ। क्या मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि मैं race-prejudice (जाति-समस्या) के स्वरूप को समझने के लिये इस यात्रा का उपयोग करना चाहती थी? इस विषय में मैं सारे समय बड़े आनन्द का उपभोग कर रही हूँ। हमें विदा करने के लिये गैरिक तथा अन्य रंगों की वेशभूषा पहने लोगों का समावेश हुआ था और स्वामीजी जिन मालाओं तथा गुलदस्तों को छोड़ रहे थे, उन्हें सँभालने तथा पहनने में मुझे इतनी आत्म-सन्तुष्टि का बोध हो रहा था कि किसी को भी यह समझने में जरा भी असुविधा नहीं हुई कि हम कौन हैं। मैं नहीं जानती कि इस बात को किसी ने मेरे विरुद्ध याद रखने का प्रयास किया था या नहीं। प्रारम्भ के दो-एक दिन स्वामीजी ने मुझे खूब समय दिया था। जब भी किसी व्यक्ति ने मेरे साथ बातें करने की चेष्टा की, तो मैंने जानबूझ कर बातचीत का रुख उन्हीं की ओर मोड़ दिया, ताकि सभी जान जायँ कि मैं उन्हीं की पताका के नीचे यात्रा कर रही हूँ। इस समय मैं देख रही हूँ कि मेरी सावधानी के बावजूद प्रत्येक महिला ने मुझसे परिचय कर लिया है, अत: युद्ध जीता जा चुका है। वर्तमान में अनेक पुरुष ऊपर आकर मेरे साथ बातें करते हैं – परन्तु किसी 'नेटिव' (हिन्दुस्तानी) के आ जाने पर, खिसक पड़ते हैं। ... वैसे ये लोग संख्या में कम हैं। बाकी लोग ठहरकर स्वामीजी से बातें करने के बाद जाते हैं।

इसे मैं किसी अंग्रेज के लिये बड़ा गौरवजनक आचरण नहीं कहूँगी, वैसे यह अति पाशविक भी नहीं है। है न? इससे मैं अपने भीतर एक विशेष शक्ति का अनुभव कर रही हूँ। यहाँ यह भी बता देना उचित होगा कि इस मार्ग से यात्रा करनेवाले कोई बड़े विशिष्ट लोग नहीं हैं; वैसे जिन व्यक्ति ने अभी हाल ही में हमारी टोली में प्रवेश किया है, वे अच्छे व्यक्ति हैं; शिक्षा-विभाग से जुड़े हैं, विश्वविद्यालय में शिक्षाप्राप्त हैं, स्विनबर्न तथा रोसेटी के भक्त हैं और मेरे प्रिय चित्रों, कविताओं तथा पुस्तकों के प्रेमी हैं। स्वामीजी के आने पर इनका मनोभाव कैसा रहेगा, मैं नहीं जानती और न परवाह करती हूँ। क्योंकि उन्हें छोड़कर वे मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रख सकते; और मैं देख रही हूँ कि जहाज की किसी अन्य महिला के प्रति उनकी कोई खास रुचि नहीं है। इन सब जान-पहचानों का कोई महत्त्व है या नहीं, मैं नहीं जानती। मैं पूरे भारत की व्यवस्था को नहीं सुधार सकती। तथापि मुझे लगता है कि यदि ३०-४० युवक, इस महीने-भर की समुद्र-यात्रा के दौरान भारत के विषय में व्यावहारिक ज्ञान की कुछ धारणाएँ प्राप्त कर सकें, यदि वे स्वामीजी के चरणों में बैठकर आलोक पाने की इच्छा करें, तो यह सचमुच ही सार्थक कार्य होगा। तथापि race-prejudice (जाति-विद्वेष) एक बड़ी बाधा है।

जहाज में हम कुल तीन महिलाएँ हैं। इनमें से एक अमेरिकी मिशनरी की पत्नी है, जो अपने पति तथा चार छोटे

बच्चों के साथ जा रही है। ये बेचारे मेरे प्रति जरा भी निकृष्टता का भाव नहीं रखते, परन्तु ये बड़े गरीब तथा दुर्दशाग्रस्त लगते हैं, तथापि वे सौजन्यपूर्ण भाव से प्रसन्न रहते हैं। वैसे इन लोगों का, इतने सारे दुबले-पतले बच्चों के साथ इतना दयनीय दिखना कदापि अच्छा नहीं है; और मैं याद करने का प्रयास कर रही हूँ कि वे उन्हें इस समय कितनी सारी भयंकर बातें कह रहे होंगे। मैं इन लोगों के प्रति मित्रभाव रखे बिना नहीं रह सकती, परन्तु सावधानी के तौर पर मैं इनसे यथासम्भव दूरी बनाये रखती हूँ। इन्हें बोगेश कहते हैं। ... ये लोग पश्चिम वर्जीनिया जा रहे हैं।[१]

अब हमारा जहाज पूर्व श्रीलंका के बन्दरगाह में प्रवेश कर रहा है। मैं एक पूरा लीला-नाट्य ही देख रही हूँ। नाश्ते के पूर्व 'वसन्त की वायु' की सुगन्ध मिली। वैसे केवल स्वामीजी ने ही माना कि मुझसे भूल नहीं हुई है।

क्या मैं तुम्हें बता चुकी हूँ कि जहाज के गंगा से नीचे उतरने के बाद उनके मुख से क्या उद्‌गार निकला था, ''इन ढाई वर्षो की कैसी पीड़ा का बोझ अब मैं अपने पीछे छोड़ रहा हूँ!'' उन्होंने अपनी माता के विषय में जिस भाव से बातें की थीं, उन्होंने अपनी माता को जैसी पीड़ा दी है और इस बार लौटकर बाकी जीवन उन्हीं की सेवा में उत्सर्ग कर देंगे – वह प्रतिज्ञा; इन सब विषयों पर उन्होंने जो कुछ कहा था, उनमें निहित गहन पवित्रता का स्वरूप तुम्हें समझा पाने की क्षमता मुझमें नहीं थी; इसीलिये ये बातें मैंने तुम्हें नहीं बताई थीं। उन्होंने आर्त भाव से चीत्कार करते हुए कहा था, ''क्या तुम नहीं देखती, अब मुझे सच्चा वैराग्य हुआ है! यदि क्षमता होती, तो मैं अपने अतीत जीवन को बदल देता । अन्य किसी कारण से नहीं – केवल अपनी माँ को खुश करने के लिये – यदि मेरी आयु १० वर्ष कम होती, तो विवाह कर लेता। अहा, मैं इतने वर्षों से क्यों कष्ट पाता रहा? उच्चाकांक्षा का पागलपन! नहीं, नहीं'' – सहसा आत्मसमर्थन के भाव से – ''मैं महत्त्वाकांक्षी कभी नहीं था! प्रसिद्धि तो मुझ पर थोप दी गयी थी!''

मैं बोली, ''सचमुच ही स्वामीजी! आपमें ऐसी क्षुद्रता कभी नहीं रही। परन्तु मैं विशेष रूप से प्रसन्न हूँ कि आपकी आयु १० वर्ष कम नहीं है!'' इस बात पर वे मेरी ओर देखकर हँस पड़े।

प्रिय युम, इन विषयों के सन्दर्भ में यदि मैंने पहले कोई आलोचना या अधीरतापूर्ण बात लिखी हो, तो उसके प्रत्येक शब्द को भूल जाना, क्योंकि इस समय मैं एक ऐसे अदम्य प्रेम के प्रति सम्मान के भाव से परिपूर्ण हूँ। मैं जानती हूँ कि तुम समझ जाओगी। यह सब मेरे विचार का विषय नहीं हैं और मुझे इन पर कोई राय प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं है। तथापि वे वहाँ मर रहे थे और अब वे सुरक्षित रूप से यहाँ हैं – इसके लिये मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूँ! अपना बलिदान कर देना बहुत बड़ी बात है, परन्तु कौन जाने, सम्भव है कि उसका सचेतन उद्देश्य भ्रान्तिपूर्ण हो!

ईश्वर को धन्यवाद कि मैंने उनकी दूसरी मूर्ति भी देखी। उन्होंने तीव्र भावावेग के साथ मुझे स्मरण करा दिया – वे एक अन्य मनुष्य के जीवन तथा साधना के न्यासी हैं – संरक्षक हैं। यदि कोई – कोई पुरुष या नारी – हमारे अर्थात् रामकृष्ण के शिष्यों के बीच कोई बुराई लाये, तो वे स्वयं ही हाथों में तलवार लेकर उसका – उस अपराधी का संहार कर देंगे।[२]

१. स्वामीजी ने इस बोगेश-परिवार का मनोरम शब्दचित्र अंकित किया है, जिसमें व्यंग्य तथा करुणा दोनों ही मिश्रित हैं – ''जहाज में दो पादरी सवार हुए हैं। एक अमेरिकन – सपत्नीक, बड़े अच्छे आदमी हैं, नाम है बोगेश। बोगेश का विवाह हुए सात वर्ष हो चुके हैं; लड़के-लड़कियाँ छह हैं; नौकर लोग कहते हैं, खुदा की बड़ी मेहरबानी है! लड़कों को शायद यह अनुभव नहीं हुआ है! बोगेश की स्त्री उसी डेक पर एक गुदड़ी बिछाकर लड़के-लड़कियों को सुलाकर चली जाती है। वे सब वहीं गन्दगी में लथपथ होकर रोते हुए लोटते-पोटते हैं। यात्री सदा ही आशंकित रहते हैं। डेक पर टहलने की गुंजाइश नहीं। डर है कि कहीं बोगेश के लड़कों को कुचल न डालें। सबसे छोटे बच्चे को – चौकोर टोकरी में सुलाकर बोगेश और उसकी पादरिन आपस में लिपट कर चार घण्टे कोने में बैठे रहते हैं। तुम्हारी यूरोपीय सभ्यता समझना कठिन है। हम लोग यदि बाहर कुल्ला करें या दाँत माँजें, तो कहोगे कि 'कैसा असभ्य है, ये सब काम एकान्त में करना उचित है' और तुम्हारा यह सब सटापटी क्या एकान्त में करना अच्छा नहीं! फिर तुम लोग इसी सभ्यता की नकल करने जाते हो! खैर, बिना इस पादरी पुरुष को देखे तुम लोग समझ नहीं सकोगे कि प्रोटेस्टेंट धर्म ने उत्तर यूरोप का क्या उपकार किया है! यदि ये दस करोड़ अंग्रेज सब मर जायँ, केवल यह पुरोहित-कुल ही बचा रहे, तो बीस वर्ष के भीतर फिर दस करोड़ की सृष्टि हो जायगी! ...

टूटल नाम की छोटी-सी लड़की अपने बाप के साथ जा रही है, उसकी माँ नहीं है। हम लोगों की निवेदिता टूटल और बोगेश के बच्चों की माँ बन बैठी है। ... बोगेश के एक छोटे बच्चे की देखभाल करनेवाला कोई भी नहीं है। बेचारा दिन-भर डेक के काठ पर लुढ़कता फिरता है। वृद्ध कप्तान बीच-बीच में केबिन से निकलकर उसे चम्मच से शोरबा पिला जाता है और उसका पैर दिखाकर कहता है, कितना दुबला लड़का है, कितनी लापरवाही!'' (परिव्राजक)

२. स्वामीजी के मन में यह वेदना सदा जाग्रत थी कि उन्होंने संन्यास लेकर, संसार त्याग करके अपनी माँ के प्रति अन्याय किया है। जितने दिन श्रीरामकृष्ण द्वारा उन पर आदिष्ट कार्य की धुन सवार थी – अमेरिका यात्रा,

जैसा कि तुमने कहा था, वे जरा भी नहीं जानते कि आगे क्या होनेवाला है। हमारी यात्रा के पूर्व दोपहर को हम लोगों ने माँ के बैठकघर में भोजन किया था। किसी ने पूछा कि मैं कब लौटूँगी? मैंने यथारीति उत्तर दिया। वे धीमी आवाज में बोले, ''मान लो यदि तुम दो वर्ष के भीतर नहीं लौटी, तो ...!''

फिर एक दिन हम लोग अपनी योजनाओं पर चर्चा कर रहे थे। मैं बोली, ''परन्तु आप निश्चय ही इसके पहले ही मुझे भारत वापस भेजेंगे।''

एक भयभीत बालक के समान वे चौंक कर बोले, ''नहीं, नहीं, इस बार मैं यहाँ अधिक दिन नहीं ठहरने वाला हूँ। अब मुझमें अपनी आजीविका कमाने की क्षमता नहीं रही!'' इसके बाद वे सर्वशान्ति के भाव में लौट गये, ''मार्गट, परन्तु ये बातें स्वयं ही निश्चित हो जायेंगी! याद रखो – माँ ही सब जानती है।''

खैर, मुझे मेरी शिक्षा प्राप्त हो गयी; मैं मानो प्रवाह के ऊपर बहे जा रहे एक तिनके के समान हूँ, तथापि तुम्हें यथासाध्य सबको जोड़कर मेरे लिये ऐसी व्यवस्था तैयार करनी होगी, ताकि मैं व्याख्यानों, लेखन और भिक्षा के द्वारा उनके लिये पर्याप्त धन एकत्र कर सकूँ। यह सच है कि यदि मैं सौभाग्यवश कुछ जुटा सकी, तो वे उसे यथेच्छा व्यय करेंगे। मेरे मधुर स्वामीजी! ओह युम, इस प्रकार यदि मैं उनके लिये जरा-सा भी उपयोगी हो सकी, तो फिर मुझे

प्रथम प्रचार में सफलता, भारतीय कार्य का संगठन आदि करते समय वे स्वाभाविक रूप से भी उन्माद में थे – और तब तक माँ के प्रति अन्याय की पीड़ा काफी कुछ दबी पड़ी थी, पूरी तौर से गयी नहीं थी। खेतड़ी के राजा को स्वामीजी अपने कार्य का प्रधान सहायक मानते थे – इसलिये नहीं कि उन्होंने निवेदिता आदि के समान उनके कार्य में सहायता की थी, या फिर ओली बुल के समान रुपये दिये थे – इसके मूल में है कि खेतड़ी-नरेश ने उनकी माता तथा भाइयों का आर्थिक उत्तरदायित्व सँभाल लिया था, इसी कारण वे निश्चिन्त मन से धर्म तथा मानवता का कर्मभार वहन कर सके थे। अमेरिका में रहते समय भी वे अपनी माता को कभी नहीं भूले थे और अपने अन्तरंग लोगों को उनके विषय में आवेगपूर्वक लिखा था। जब कलकत्ते में प्रताप मजुमदार उनके नाम पर गन्दी अफवाहें फैलाने लगे, तो वे सर्वाधिक आतंकित हो उठे थे कि ये सब झूठी बातें जब मेरी माँ के कानों तक पहुँचेगीं, तो 'उन्होंने अपने जिस सबसे प्रिय पुत्र को देश और धर्म के लिये त्याग किया है – वही पुत्र दूर देश में घोर पाशविक जीवन बिता रहा है – यह सुनकर उनका हृदय विदीर्ण हो जायेगा।' अमेरिका से लौटने के बाद एक बार फिर माँ के दुखों तथा क्रन्दन ने उन्हें विचलित कर दिया था। सम्भव है कि अन्य माताओं के समान ही उन्होंने भी बारम्बार दत्त वंश के लुप्त हो जाने की आशंका व्यक्त की हो। स्वामीजी उस समय अपनी माता को शान्त करने के लिये बेचैन थे। स्वामीजी के एक पत्र से ज्ञात होता है कि वे अपने छोटे भाई का विवाह कर देना चाहते थे। सम्भवत: इसका कारण यह था कि वे माँ के अनुरोध पर ही उस दत्त वंश (जिसमें दुर्गाचरण तथा नरेन्द्रनाथ ने जन्म लिया था) की धारा को जारी रखने को तत्पर हुए थे और कदाचित् वे महेन्द्रनाथ तथा भूपेन्द्रनाथ के बीच भूपेन्द्र को ही मानसिक रूप से विवाह के अधिक उपयुक्त समझते थे।

मातृऋण तथा वंशऋण कदाचित् एक संन्यासी को भी स्वीकार करने पड़ते हैं। उन्होंने छोटे भाई का विवाह करके अपने वंशऋण का शोध करने की बात सोची थी और मातृऋण का शोध करने हेतु उन्होंने अपनी राजकीयता तक को त्यागकर भिक्षा का पात्र उठा लिया था। २२ नवम्बर, १८९८ को उन्होंने बड़े विनयपूर्वक धन की याचना करते हुए खेतड़ी के महाराजा को जो पत्र लिखा था, उसका एक अंश – ''जगत् की सेवा के निमित्त मैंने अपनी माँ के प्रति शोचनीय उदासीनता दिखायी है। फिर, मेरे द्वितीय भाई (महेन्द्र) के बाहर (विदेश) चले जाने के कारण वह शोक से अति कातर हो चुकी है। अब मेरी अन्तिम इच्छा यह है कि कम-से-कम कुछ वर्षों तक मैं अपनी माँ की सेवा करूँ। मैं अपनी माँ के साथ रहना चाहता हूँ और वंश का उच्छेद रोकने हेतु अपने छोटे भाई का विवाह कर देना चाहता हूँ। ऐसा होने से निश्चित रूप से मेरा तथा मेरी माँ का अन्तिम काल शान्ति में बीतेगा। माँ इस समय एक छोटी-सी कोठरी में रहती हैं। मैं उनके लिये एक छोटा-सा सुन्दर मकान बनाना चाहता हूँ और सबसे छोटे भाई के लिये कुछ व्यवस्था कर देना चाहता हूँ, क्योंकि उसके द्वारा किसी अच्छे रोजगार की सम्भावना बहुत कम है।... मैं क्लान्त, भग्नहृदय और मरणासन्न हूँ। क्या मुझे कहना होगा कि मेरे प्रति आपका किया गया अन्तिम महान् कृपा का कार्य आपके महान् तथा उदारतापूर्ण स्वभाव के अनुरूप होगा; और आपने मेरे प्रति जो अनेक प्रकार की सहृदयता दिखाई है, उनमें यह सर्वोपरि होगा! और इसके द्वारा महाराज मेरे अन्तिम दिनों को शान्त तथा सहज बना देंगे।''

राजा के लिये स्वामीजी की इच्छा आदेश के समान थी। उन्होंने तत्काल यह जानने का प्रयास किया कि मकान को बनवाने तथा परिवार का खर्च चलाने हेतु कितने रुपयों की आवश्यकता होगी। स्वामीजी ने कृतज्ञता के साथ लिखा, ''इस जगत् में आज मैं जो कुछ भी हूँ, वह अधिकांशत: आपकी सहायता से ही हुआ है। एक भयंकर चिन्ता से मुक्त होकर मैंने जो संसार का सामना किया और जो कुछ कार्य कर सका – यह आपके कारण ही सम्भव हुआ है। सम्भव है कि प्रभु ने एक बार फिर और भी महानतर कार्य में यंत्र बनाने हेतु आपको चुना हो और वह है – मेरे मन से यह बोझ उतारना।''

परिवार के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करने में असमर्थ स्वामीजी ने दुखी हृदय के साथ श्रीमती ओली बुल को १२ दिसम्बर, १८९९ के पत्र में लिखा, ''अनेक वर्षों पूर्व मैं हिमालय गया था, मन में यह दृढ़ निश्चय कर कि मैं वापस नहीं आऊँगा। इधर मुझे समाचार मिला कि मेरी बहन ने आत्महत्या कर ली। फिर मेरे दुर्बल हृदय ने मुझे उस शान्ति की आशा से दूर फेंक दिया!! उसी दुर्बल हृदय ने, जिन्हें मैं प्यार करता हूँ, उनके लिए भिक्षा माँगने मुझे भारत से दूर फेंक दिया; और आज मैं अमेरिका में हूँ! शान्ति का मैं प्यासा हूँ; किन्तु प्यार के कारण मेरे हृदय ने मुझे उसे न पाने दिया। संग्राम और यातनाएँ, यातनाएँ और संग्राम! खैर, मेरे भाग्य में जो लिखा है वही हो!''

२५ अगस्त, १९०० के दिन उन्होंने भगिनी निवेदिता को लिखा, ''इस बार मेरी पूर्ण अवकाश ग्रहण करने की इच्छा थी, परन्तु अब देख रहा हूँ कि माँ की ऐसी इच्छा है कि अपने आत्मीय वर्ग के लिए मैं कुछ करूँ। ठीक है, बीस वर्ष पहले मैं जो त्याग चुका था, अब आनन्द के साथ उसका उत्तरदायित्व अपने कन्धों पर ले रहा हूँ।''

अन्य किसी भी चीज की आवश्यकता नहीं है। तुम्हारी श्रीमती स्काट की बात मैंने उन्हें बतायी; और तब से उन्होंने ऐसा मान लिया है कि मैं अमेरिका जा रही हूँ। उनकी योजना है कि निम (निवेदिता की बहन) के विवाह के बाद मैं भी उनके पीछे अमेरिका जाऊँगी। मुझे यह बड़ा अद्भुत लगा। वे कहने लगे कि मुझे उनके साथ अमेरिका नहीं जाना चाहिये, क्योंकि मिशनरी लोग मुझ पर जघन्य रूप से आक्रमण में लग जायेंगे! सोचो तो जरा, स्वामीजी में भी व्यावहारिक बुद्धि जगी है। ...

तुम्हें बताना भूल गयी कि फूलों के द्वारा उनकी पूजा करने की मेरी बहुत दिनों की साध आखिरकार पूरी हो गयी। किसी ने मुझे गुलाब के फूल ला दिये; और उन्होंने मुझे उन फूलों को अपने चरणों पर चढ़ाने की अनुमति दे दी थी – इसके बाद उन्होंने मुझे आशीर्वाद भी दिया। ...

स्वामीजी को आये एक घण्टा ही हुआ था और किसी प्रकार बातचीत का रुख 'प्रेम' की ओर मुड़ गया। अन्य चीजों के अलावा वे अँग्रेज तथा बंगाल की वधुओं की निष्ठा के बारे में बोलने लगे। उन्होंने बताया कि किस प्रकार वे चुपचाप कष्ट सहती रहती हैं।

वैसे, जीवन में कभी-कभी क्षण-भर के लिए आनन्द तथा कविता की झलक भी मिल जाती है, परन्तु उसके लिए मानवीय प्रेम को आँसुओं के सागर से होकर गुजरना पड़ता है।

दुख के आँसू ही आध्यात्मिकता की उपलब्धि कराते हैं, खुशी के आँसू कदापि नहीं।

दूसरों पर निर्भरता दुखों से परिपूर्ण है, स्वाधीनता में ही सुख है।

हर तरह के मानवीय प्रेम – निर्भरता की अपेक्षा रखता है; वैसे, माँ का प्रेम कभी-कभी इसका अपवाद हो सकता है।

यह मानवीय प्रेम अपने प्रेमास्पद के सुख की नहीं, बल्कि अपने लिये सुख की कामना करता है।

वे बोले, यदि कल वे (स्वामीजी) शराबी हो जाएँ, तो वे कदापि अपने शिष्यों से प्रेम की अपेक्षा नहीं करेंगे, क्योंकि वे लोग तो घबड़ाकर तत्काल उनका परित्याग कर देंगे। परन्तु उनके कुछ गुरुभाई (सब नहीं) ऐसा नहीं करेंगे। उन लोगों की दृष्टि में वे तब भी वही बने रहेंगे।

''सुनो मार्गट, जब आधे दर्जन लोग इस प्रकार प्रेम करना सीख जाते हैं, तभी एक नए धर्म का जन्म होता है। उसके पहले नहीं। मुझे सर्वदा उस महिला की याद आती है, जो भोर के समय कब्रिस्तान में जाती है और जब वहाँ खड़ी होती है, तो उसे एक आवाज सुनाई देती है। वह सोचती है कि यह माली की आवाज है और तब ईसा उसका स्पर्श करते हैं। वह मुड़कर देखती है और केवल इतना ही कह पाती है, 'मेरे प्रभु! मेरे नाथ!' बस इतना ही, 'मेरे प्रभु! मेरे नाथ!' व्यक्ति का अस्तित्व समाप्त हो चुका है। प्रेम पशुत्व से आरम्भ होता है, क्योंकि यह स्थूल होता है। उसके बाद यह बौद्धिक हो जाता है और अन्त में यह आध्यात्मिकता तक पहुँच जाता है। अन्त में केवल, 'मेरे प्रभु! मेरे नाथ!' मुझे इस तरह के आधे दर्जन शिष्य दो और मैं पूरी दुनिया को फतह कर लूँगा।' यदि रामकृष्ण परमहंस ने हरम बना रखा होता, तो भी मैंने इसमें उनकी सहायता की होती।''

(क्रमशः)

किसी ने श्रीरामकृष्ण देव से कहा, ''महाराज बहुत दिनों से साधन-भजन में लगा हूँ, पर कुछ भी तो समझ में नहीं आया । हम लोगों का साधन-भजन करना वृथा है ।''

श्रीरामकृष्ण देव ने मुस्कुराकर कहा, ''देखो, जो पुश्तैनी किसान हैं, वे यदि बारह वर्ष भी अनावृष्टि हो, तो भी हल चलाना नहीं छोड़ते और जो पुश्तैनी किसान नहीं हैं, वे यह सुनकर कि खेती में बहुत लाभ होता है, इस काम में लग तो जाते हैं, किन्तु एक ही वर्ष में यदि वर्षा नहीं हुई, तो किसानी का काम छोड़कर भाग जाते हैं । वैसे ही, जो सच्चे भक्त और विश्वासी होते हैं, वे यदि सारी आयु भी ईश्वर के दर्शन न पाएँ, तो भी उनका नाम और गुणगान करना नहीं छोड़ते ।''
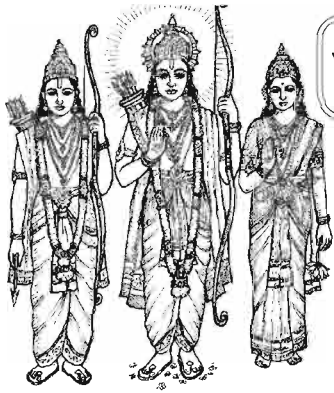
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/३)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

एक तो सरस्वती को निमन्त्रण देना है। दूसरे जो भक्त हैं, वे गुणों को निमन्त्रण नहीं देते, सरस्वती को निमन्त्रण नहीं देते। वे किसको निमन्त्रण देते हैं? श्रीराम को निमन्त्रण देते हैं, ईश्वर को बुलाते हैं। अब आनन्द यह है कि संसार में गुण आते कठिनाई से हैं और जाते देर नहीं लगती। प्रभु ऐसे हैं कि वे तो निर्गुण हैं, उनको गुण की कोई आवश्यकता ही नहीं, तो गुण स्वयं उनके पीछे-पीछे लगे रहते हैं, आपको हमारी आवश्यकता नहीं है, पर हमें तो आपकी आवश्यकता है, हम तो आपके साथ रहेंगे। यही बात श्रीमद्भागवत में भगवान ने कही –

निर्गुणं मां गुणाः सर्वे भजन्ति निरपेक्षकम्।

मैं निरपेक्ष हूँ, पर ये गुण ही मेरा भजन किया करते हैं। इसलिए परशुरामजी ने भगवान राम से कहा कि धनुष खींचिए। धनुष की डोरी को भी संस्कृत में गुण कहते हैं। तो डोरी खींचिए, गुण खींचिए। देखें, यह विष्णु का धनुष है, अगर आप सगुण-साकार हैं, तो विष्णु के धनुष की डोरी को आप खींचकर चढ़ा दीजिए। भगवान राम ने हाथ क्यों नहीं बढ़ाया? बोले, जो गुणों को खींचता है, वह तो अधूरा है। अगर कोई डोरी को खींचे भी, तो जब तक आपकी पकड़ अच्छी है, तब तक वह डोरी आपके हाथ में रहेगी और जरा-सी भी पकड़ ढीली हुई कि डोरी गई । इस संसार के कितने लोग ऐश्वर्य को, सत्ता को पकड़ते हैं, पर जैसे ही पकड़ ढीली हुई कि कब वह हाथ से निकल गई, पता ही नहीं चलता। संसार की सारी वस्तुओं का, गुणों का यही हाल है। भगवान राम ने हाथ बिल्कुल नहीं बढ़ाया। वह तो भगवान का संकेत पाकर स्वयं ही भागा। क्योंकि सभी गुण मुझ निरपेक्ष निर्गुण का भजन करते हैं –

निर्गुणं मां गुणाः सर्वे भजन्ति निरपेक्षकम्।

भगवान ने धनुष से कहा, मुझे कोई आवश्यकता नहीं। पर वह धनुष तो स्वयं भगवान की ओर भागा। डोरी चढ़ गई। परशुरामजी ने धनुष से कहा कि मैंने इतने सम्मान से तुम्हें अपने कंधे पर रखा और वहाँ से तुम्हें निमन्त्रण तक नहीं मिला और तुम भागे चले गये। धनुष ने कहा – महाराज, उनको मेरी आवश्यकता नहीं है, पर मुझे तो उनकी आवश्यकता है। आप तो देख ही रहे हैं कि एक गुणाभिमानी टूटा पड़ा है। क्या आप चाहते हैं कि हम भी टूट कर ही गिरें? इस तरह से यदि आप उस ईश्वर को बुलायेंगे, तो गुण अपने आप अवश्य आयेगा। वह आए बिना रह ही नहीं सकता। भाई, सीधी-सी बात है कि मिठाई की दुकान पर जाकर आप केवल डब्बा या दोना माँगेगे, तो दुकानदार आपको वही देगा, आप उसे खरीद सकते हैं। लेकिन यदि आप मिठाई खरीदेंगे, तो डब्बा या दोना तो अपने आप साथ में आ जायेगा। इसी प्रकार अगर आप गुण को बुलायेंगे, तो भगवान नहीं आयेंगे, पर भगवान को बुलायेंगे, तो गुण अपने आप आयेंगे ही। तुलसीदासजी तो उन कवियों में हैं। उन्होंने सरस्वती को थोड़े ही बुलाया। तब वे कैसे आईं?

सारद दारुनारि सम स्वामी।
रामु सूत्रधर अंतरजामी।।
जेहि पर कृपा करहिं जनु जानी।
कबि उर अजिर नचावहिं बानी।। १/१०४/५-६

तुलसीदास जी कविता बनाते थोड़े ही हैं, मानो वे सोच रहे हों कि कौन-सा शब्द जोड़ें और कौन-सा तोड़ें? वहाँ तो प्रभु ही उस काव्य का सृजन कर रहे हैं। कवि तो माध्यम मात्र है। पण्डित ज्वाला प्रसादजी पण्डित-स्वभाव के थे। व्याकरण की दृष्टि से उन्हें लगा कि 'मरम बचन जब सीता बोला', बड़ा अशुद्ध हो गया है। क्योंकि जब स्त्री है, तो बोला न होकर बोली शब्द होगा। उन्होंने उसे तुरन्त बदल दिया। उन्होंने 'मरम बचन जब सीता बोला' की जगह लिख दिया – 'मरम बचन जब सीता बोली' और इसके साथ-साथ लिख दिया, – 'हरि प्रेरित लछिमन मति डोली ।'

तुलसीदासजी ने लिखा था –

मरम बचन जब सीता बोला।

हरि प्रेरित लछिमन मन डोला।। ३/२७/५

पण्डितजी ने 'मन' के स्थान पर मति बना दिया और 'बोला' के स्थान पर 'बोली' कर दिया। अब उन्हें पता ही नहीं था कि मन ही डोलता है। मन का ही स्वभाव है डोलना। गोस्वामीजी ने ठीक ही लिखा है। जब उन्होंने अपने ग्रन्थ में 'बोला' लिखा, तो उन्हें बड़ा संकोच लगा। उन्होंने यह नहीं लिखा कि श्रीसीताजी ने क्या कहा। वे जानते थे कि लोग अन्य ग्रन्थों में लिखे वाक्य को पढ़कर कह सकते हैं कि क्या श्रीसीताजी के मुख से लक्ष्मण के लिए ऐसा वाक्य निकल सकता है? इसलिए गोस्वामीजी कह देते हैं, देखिए, आप माँ को कुछ मत कहियेगा। अगर आप यह अर्थ करेंगे कि मरम बचन जब सीता बोला, तो अशुद्ध हो जायेगा और अगर आप यह कहेंगे कि मरम बचन जब बोला गया, तो शुद्ध हो जायेगा। जब बोला गया होगा, तो बोला लिखना पड़ेगा, और जब बोली होगी, तो बोली कहेंगे। इसमें सूत्र यही है। कर्ता प्रधान वाक्य है, 'बोली'। और कर्म प्रधान वाक्य है 'बोला'।

गोस्वामीजी ने 'पुल्लिग' क्यों बना दिया? उनका कहना है कि वे बोलीं थोड़े ही, उनसे तो बोलवाया गया। जब मरम बचन सीताजी से बोलवाया गया और बोलवाने वाले राम हैं, इसलिए पुल्लिग ही ठीक रहेगा। बोली ठीक नहीं रहेगा। श्रीराम ने कहलवा दिया। उन्होंने कह दिया। उसका परिणाम यह हुआ कि लक्ष्मणजी ने एक रेखा खींच दी। कितनी बड़ी बात है ! वैराग्य के अभाव में ज्ञान और भक्ति पर संकट आ सकता है, पर वैराग्य की रेखा भी इतनी शक्तिशाली है कि अगर इस वैराग्य की रेखा की मर्यादा बनाएँ रखें, तो रावण भी उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता है, मोह भी भक्ति का हरण नहीं कर सकता। यह है वैराग्य की महिमा। इसलिये लक्ष्मणजी ही अविचल हैं। लीला में भगवान राम रो रहे हैं, श्रीसीताजी विलाप कर रही हैं। अगर कोई विलाप नहीं कर रहा है, तो लक्ष्मणजी विलाप नहीं कर रहे हैं। गोस्वामीजी ने कहा कि यहाँ तो उलटी बात हो गई। भगवान राम लता-वृक्षों से पता पूछ रहे हैं और समझा कौन रहा है?

लछिमन समुझाए बहु भाँती। ३/२९ (ख)/८

लक्ष्मणजी भगवान को उपदेश देते हैं, समझाते हैं। मानो प्रभु का तात्पर्य यह है कि वैराग्य की भूमिका बड़ी अद्भुत है ! वैराग्य सेवक भी है, वैराग्य सेनापित भी है। वैराग्य मन्त्री भी है, वैराग्य गुरु भी है। वैराग्य की इतनी भूमिका है। व्यंग्य में एक वाक्य कहा गया है। एक व्यक्ति ने पुलिस थाने में यह लिखाया कि मेरा छाता और वस्त्र खो गया। इसके साथ-साथ उसने और भी तीन-चार वस्तुओं का नाम लिखा दिया। बाद में पुलिस ने पता लगाया, तो कहीं से एक कम्बल मिल गया, तो पुलिस वाले ने बिगड़ कर कहा, तुमने तीन-चार वस्तुओं का नाम लिखा दिया, यहाँ तो एक कम्बल ही है, दूसरी कोई वस्तु है ही नहीं। तो उसने कहा, भाई, यह कम्बल मेरा बिस्तर भी है, उसे बिछा भी लेता हूँ, जाड़ा लगने पर उसे ओढ़ भी लेता हूँ, पानी बरसने पर सिर पर ढक लेता हूँ, इसलिए यही मेरे लिये छाता है, ओढ़ने, बिछाने और पहनने का भी है, यही मेरा सब कुछ है। वैराग्य भी क्या नहीं है। लक्ष्मणजी के इतने रूप हैं, कभी शिष्य बनकर भगवान से उपदेश ले रहे हैं, कभी भगवान को ही समझा रहे हैं। एक विशेष बात है। सीता-हरण के बाद भगवान राम आगे नहीं चलते हैं, पीछे चलते हैं। सूत्र बड़ा अनोखा है। उसका संकेत आपको किष्किंधाकाण्ड के प्रारम्भ में मिलेगा। उसमें भगवान राम और लक्ष्मण की जो झाँकी बताई गई है – सीतान्वेषणतत्परौ। सीताजी की खोज में दोनों चले, पर शब्द क्या है?

कुन्देन्दीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ

शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।

मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ

सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौ हि नः।।

बड़ा अद्भुत श्लोक है ! बहुत गम्भीर है ! सूत्र यही है कि कुन्द और इन्दीवर के समान दोनों हैं। क्या आपने इस पर ध्यान दिया? श्रीराम की तुलना की गई इन्दीवर से और लक्ष्मण की तुलना की गई कुन्द से। इन्दीवर श्याम होता है और कुन्द श्वेत होता है। पर गोस्वामीजी ने क्रम कितना बदल दिया। अगर श्रीराम आगे होते, तो इन्दीवर के बाद कुन्द कहा जाता, पर उन्होंने कहा कि नहीं, भगवान ने वैराग्य को ही आगे कर दिया कि भई, इस समय तो तुम्हीं एक ऐसे हो, जो अविचलित हो। लगता है कि हम दोनों (श्रीराम और सीता) भटक गये, पर तुम विचलित नहीं हुए, इसलिए अब तुम्हीं आगे चलो, तुम जिधर ले चलोगे, उधर जाऊँगा। तो सीतन्वेषणतत्परौ अर्थात् जब भक्ति की

खोज में चलते हैं, तो मानो वैराग्य मार्गदर्शक है। तुम शुद्ध हो, तुम्हारे अन्तःकरण में रंचमात्र कहीं कोई व्यतिक्रम नहीं है। इसीलिये वर्णन आता है कि भगवान राम जब वन में श्रीसीताजी की खोज में चले, तो वन में चारों ओर बसन्त का आगमन हुआ। तब भगवान राम ने कहा कि लक्ष्मण तुम तो जानते ही हो, बसन्त कामदेव का सेनापति है। आज काम मुझ पर आक्रमण करने के लिये अपने सेनापति बसन्त को लेकर आ गया है। भगवान राम ने कहा –

बिरह बिकल बलहीन मोहि जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग मदन कीन्ह बगमेल।। ३/३७ (क)

सीता शक्ति हैं। जो शक्तिहीन होता है, उसी पर आक्रमण करने का साहस होता है। श्रीसीताजी के वियोग में मैं बलहीन हूँ, जब यह समाचार काम को मिला, तो आक्रमण करने के लिए आ गया। लक्ष्मणजी ने कहा, इतना दुस्साहस? लक्ष्मण, दुस्साहस नहीं, सचमुच मैं बलहीन हूँ और मुझे काम हरा देता । पर अब आपको क्या लग रहा है? श्रीराम बोले – मैं बच गया। लक्ष्मणजी बोले – कैसे बच गये? क्या आपको देखकर काम डर गया? श्रीराम बोले – मुझे नहीं तुम्हें देखकर काम डर गया।

देखि गयेउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब कटकु हटकि मनजात।। ३/३७ (ख)

काम आ तो गया सेना को लेकर, पर दूत से पता लगाया कि राम के साथ कोई रक्षक तो नहीं है? जब दूत ने तुम्हें देखा, तो घबरा कर कहा, लक्ष्मण साथ है। उसने कहा, बस, अब आक्रमण नहीं करना है। भगवान का अभिप्राय यह है कि एक बार भक्ति के अभाव में काम निकट तो आ गया, पर अब वैराग्य रक्षक है, तो मैं निश्चिन्त हूँ। जब तुम्हारी ओर मेरी दृष्टि जाती है कि चौदह वर्षों से तुम्हें उर्मिला के वियोग में कोई व्याकुलता नहीं हुई, तो मैं संकोच में पड़ जाता हूँ कि लक्ष्मण का बड़ा भाई होकर मेरी दशा ऐसी हो रही है। मैं तुम्हें देखकर सावधान हो जाता हूँ। यह वैराग्य की महिमा है। इसलिए रामचरितमानस में और ज्ञानदीपक प्रसंग में सर्वत्र वैराग्य को प्राप्त करना कितना कठिन है, वैरगय की साधना क्या है, इसका बड़ा विस्तृत उल्लेख है। वह एक प्रसंग है।

इसी प्रकार से सुग्रीव अगर ज्ञान हैं, तो हनुमान वैराग्य हैं। वैराग्य ही नहीं, प्रबल वैराग्य हैं। इसका दूसरा अर्थ नहीं ले लेंगे। यह अर्थ न लें कि यह कहकर हनुमानजी की महिमा बढ़ाई गई है। हनुमानजी और लक्ष्मणजी दोनों ही अद्वितीय हैं, अनुपम हैं। इसका अभिप्राय है कि सुग्रीव जैसे दुर्बल के लिये तो प्रबल वैराग्य की ही सुरक्षा चाहिए। वह दिखाई भी पड़ता है। इस ज्ञान ने भगवान को पहचान भी लिया, मित्रता भी हो गई और भगवान राम ने बालि का वध कर दिया। भगवान राम ने सुग्रीव को राज्य, सम्पत्ति दे दी और साथ-साथ यह वाक्य कह दिया –

अंगद सहित करहु तुम्ह राजू।
संतत हृदयँ धरेहु मम काजू।।४/११/९

भगवान ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हें राज्य-कार्य करते हुए भी सीताजी का पता लगाना है, इसको एक क्षण के लिये भी भुलाना मत। पर सुग्रीव भूल गये। विषय का आकर्षण ही ऐसा है कि उसमें भूल जाना बड़ा सरल है। सुग्रीव राम को जान गये, मित्रता हो गई, बालि का वध हो गया, पर विषय में ऐसे डूबे कि भगवान का कार्य भूल गये। तब? कैसी बढ़िया बात आई। उधर से तो भगवान राम ने लक्ष्मण को, अर्थात् वैराग्य को ही भेजा। उस विषयी को विषय से निकालने के लिए तो वैराग्य ही जाये, पर वहाँ तो घर में ही एक महान वैराग्य था, उसने लक्ष्मणजी का काम उनके आने से पहले ही पूरा कर लिया। उस वैराग्य ने सोचा –

इहाँ पवनसुत हृदयँ बिचारा।
राम काजु सुग्रीवँ बिसारा।। ४/१८/१

हनुमानजी ने सोचा कि सुग्रीव ने प्रभु का कार्य भुला दिया? पर वे कितने निरभिमानी हैं ! वे सुग्रीव के पास गये –

निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा।
चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा।। ४/१८/२

हनुमानजी ने बड़े आदरपूर्वक सुग्रीव के चरणों में प्रणाम किया। सुग्रीव हनुमानजी के बड़े कृतज्ञ हैं। इसलिए पूछ दिया, कैसे कष्ट किया आपने? बोले, मैंने सोचा कि आपको कथा सुनावें। सुग्रीव ने कहा, आप तो बड़ी मधुर कथा सुनानेवाले हैं। पहले भी जिस समय प्रभु से सुग्रीव की मित्रता हुई थी, उस समय भी उन दोनों के बीच में हनुमानजी ही कथा-वाचक थे –

तब हनुमंत उभय दिसि की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढ़ाइ।। ४/४

(क्रमशः)

सफलता में अभ्यास का महत्त्व

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

निषाद राज हिरण्यधनु के पुत्र एकलव्य ने आचार्य द्रोण से धनुर्विद्या की शिक्षा प्रदान करने का निवेदन किया। परन्तु आचार्य ने उसे भील जाति कहकर धनुर्विद्या देने से मना कर दिया। हालाँकि उन्होंने ऐसा कौरवों की ओर ही दृष्टि रखकर किया था। तब एकलव्य ने द्रोणाचार्य के चरणों में मस्तक रखकर प्रणाम किया और वन में लौटकर उनकी मिट्टी की मूर्ति बनायी तथा उसी में आचार्य की परमोच्च भावना रखकर धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारम्भ किया। आचार्य में उत्तम श्रद्धा रखकर उत्कृष्ट अभ्यास के बल से उसने बाणों के छोड़ने, लौटाने और संधान करने में निपुणता प्राप्त कर ली। कुछ वर्षों बाद एक दिन कौरव और पाण्डव द्रोणाचार्य की आज्ञा से शिकार पर निकले। उन लोगों के साथ एक कुत्ता भी था, जो वन में घूमता हुआ एकलव्य के पास जा पहुँचा। एकलव्य का काला रंग और जटादि देखकर वह भौंकने लगा, जिससे एकलव्य के अभ्यास में बाधा पड़ने लगी। तब उसने कुत्ते के मुख में एक साथ सात बाण भरकर उसे चुपकर दिया। जब कुत्ता वापस आया, तब राजकुमारों ने बाण चलाने की कला को देखकर आश्चर्यचकित हो एकलव्य के पास पहुँचकर उसका परिचय पूछा। एकलव्य ने अपने को गुरु द्रोणाचार्य का शिष्य बताया। जब राजकुमारों ने वापस आकर द्रोणाचार्यजी को यह घटना बताई, तब स्वयं द्रोणाचार्यजी राजकुमारों के साथ एकलव्य के पास पहुँचे और गुरु-दक्षिणा में उसके दाहिने हाथ का अंगूठा माँगा। एकलव्य ने अविलम्ब प्रसन्नचित्त से अपना दाहिना अंगूठा काटकर गुरु-दक्षिणा प्रदान की। एकलव्य की अपने गुरु और अभ्यास के प्रति निष्ठा ने उसे अमर बना दिया। उसने यह सिद्ध कर दिखाया कि अभ्यास ही गुरु है।

प्रयासों को बारम्बार दोहराते रहने से वह अभ्यास में परिवर्तित हो जाता है। अभ्यास लक्ष्य-प्राप्ति या परीक्षा के पूर्व की तैयारी है, जिसमें व्यक्ति सफल और असफल होते हुए अपने को अनुभवों से परिपक्व करता हुआ उस कार्य में दक्षता प्राप्त करता है। आइए, हम इसी अभ्यास विषय पर कुछ चिन्तन करें –

अभ्यास की आवश्यकता

नवीन एक गाँव में रहता था। उसके गाँव में भौतिक और रसायन विज्ञान के शिक्षक उपलब्ध नहीं थे। अत: वह ग्यारहवीं की परीक्षा के पश्चात् दो महीने की छुट्टी में इन दो विषयों की पढ़ाई के लिए अपनी मौसी के घर चला गया। उसकी मौसी एक छोटे शहर में रहती थी, जहाँ बहुत से कुशल शिक्षक उपलब्ध थे। लगभग दो महीने में नवीन ने बड़ी लगन से इन दो विषयों की अच्छी पढ़ाई कर ली। फिर गाँव लौटकर वह अन्य विषयों की पढ़ाई करने लगा। देखते-ही-देखते परीक्षा की घड़ी आ गई। परीक्षा के प्रथम दो विषय भौतिक और रसायन विज्ञान होने के कारण नवीन प्रसन्न था, क्योंकि उसने इनकी तैयारी पहले से ही कर रखी थी। परन्तु परीक्षा के पूर्व जब वह इन विषयों को पढ़ने बैठा, तो उसे सब कुछ नया-नया-सा लगने लगा। कारण? कारण यह था कि उसने छुट्टियों में किए अध्ययन का पुन: अभ्यास नहीं किया था। इस प्रकार इन दोनों ही विषयों की परीक्षा में वह कुछ अच्छा नहीं कर सका तथा इसी चिंता में उसके अन्य विषय भी बिगड़ गए। नवीन अब समझ चुका था कि अभ्यास के अभाव में विद्या नष्ट हो जाती है। इस घटना के माध्यम से हम अभ्यास की आवश्यकता को समझ सकते हैं। स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने एक प्रवचन में अभ्यास की आवश्यकता को महत्त्व देते हुए कहा था – ''सदा अभ्यास आवश्यक है। तुम रोज देर तक बैठे हुए मेरी बात सुन सकते हो, परन्तु अभ्यास किये बिना तुम एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकते।''[१]

अभ्यास का महत्त्व

अभ्यास से आत्मविश्वास बढ़ता है – प्रथम प्रयास में अधिकांशत: विफलता मिलने की ही सम्भावना अधिक होती है। पर जैसे-जैसे हम अभ्यास करते जाते हैं, वैसे-वैसे हमारी त्रुटियाँ कम होती जाती हैं। इस प्रकार हमारी दक्षता बढ़ती है और वह कार्य सरल लगने लगता है, एक साधारण व्यक्ति में भी आत्मविश्वास का उदय होने लगता है और जब अभ्यास करते-करते वह उस विद्या में पारंगत हो

जाता है, तब वही व्यक्ति पूर्ण आत्मविश्वास से भर जाता है।

अभ्यास से संस्कार बदले जा सकते हैं

बुरे कार्यों का अभ्यास हो जाने से उसकी लत लग जाती है और व्यक्ति के लिए उसे छोड़ पाना कठिन ही नहीं, बल्कि असम्भव हो जाता है। परन्तु यदि इसी अभ्यास को अच्छे कार्यों में लगाया जाए, तो अच्छे कार्यों का अभ्यास हो जायेगा।

जब घर में सब सो जाते, तो पढ़ाई के बहाने एक युवक अपने कमरे में इंटरनेट खोलकर अश्लील सिनेमा देखने लगता। बाद में, वह अश्लील सिनेमा देखने का अभ्यस्त हो गया। प्रारम्भ में तो उसे इससे सुख मिलता था, पर बाद में वह इसके बिना नहीं रह पाता था, जिससे उसकी पढ़ाई अत्यन्त प्रभावित होने लगी। इस समस्या के समाधान हेतु वह एक आश्रम पहुँचा और एक संन्यासी से अपनी समस्या बताई। संन्यासी ने उसे स्वामी विवेकानन्द जी का एक उपदेश सुनाया – "केवल सत्कार्य करते रहो, सर्वदा पवित्र चिन्तन करो, असत् संस्कार रोकने का बस, यही एक उपाय है। ...चरित्र बस, पुनः-पुनः अभ्यास की समष्टि मात्र है और इस प्रकार का पुनः-पुनः अभ्यास ही चरित्र का सुधार कर सकता है।"[२]

संन्यासी ने उसे स्वामी विवेकानन्द जी की कुछ पुस्तकें दीं तथा समय मिलने पर उसे आश्रम में आने को कहा। युवक ने भी इसका पालन किया तथा आश्रम आकर योग, जप-ध्यान, प्रार्थना, सामाजिक सेवा में योगदान आदि के द्वारा अपने संस्कारों में आमूल परिवर्तन करने में सफल हुआ।

अभ्यास से मन पर नियन्त्रण

आज से हजारों वर्ष पूर्व अर्जुन ने भगवान श्रीकृष्ण से मन की चंचलता और उसकी प्रमथन करने वाली दृढ़ शक्ति को बताते हुए इसे वश में करने को दुष्कर कहा था। तब भगवान ने इसका समर्थन करते हुए इसका समाधान बताते हुए कहा था –

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।[३]

अर्थात् हे महाबाहो ! निःसन्देह मन चंचल और कठिनता से वश में होने वाला है, परन्तु हे कुन्तीपुत्र अर्जुन ! यह अभ्यास और वैराग्य से वश में होता है।

भगवान श्रीकृष्ण का यह उत्तर आज भी प्रासंगिक है। आज भी युवा-मन इस प्रश्न का उत्तर खोज रहा है और श्रीकृष्ण के इस उत्तर से ही इसका समाधान किया जा सकता है। श्रीरामकृष्ण देव भी 'अभ्यास योग' का अनुमोदन करते हुए कहते हैं – 'अभ्यास योग, अभ्यास करो, देखोगे मन को जिस ओर ले जाओगे, वह उसी ओर जायेगा।'[४]

अभ्यास से बुद्धि वृद्धि

कविवर वृन्द लिखते हैं –

करत करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निशान।।

अर्थात् अभ्यास करते-करते मूर्ख व्यक्ति भी विद्वान हो जाता है। जैसे, कुएँ पर रस्सी के बार-बार घिसने से पत्थर पर भी निशान पड़ जाते हैं।

उपरोक्त पंक्ति वरदराज के जीवन से प्रमाणित हो जाती है। हाँ ! वरदराज एक मंदबुद्धि बालक था। उसकी बुद्धि का स्तर सहपाठियों के औसत स्तर से भी निम्न स्थिति में था। छात्र उसे चिढ़ाते रहते थे। गुरु ने उसकी स्थिति में सुधार न देख एक दिन उसे घर वापस जाने को कह दिया। वह वापस जा रहा था कि उसे मार्ग में प्यास लगी। तब उसने एक कुएँ के पास जाकर अपनी प्यास बुझाई। इसके बाद वह अपनी थकान मिटाने के लिये वहाँ बैठ गया। तब उसकी दृष्टि उस पत्थर के निशान पर पड़ी, जो रस्सी के बार-बार खींचने से हुए थे। तब उसने सोचा कि यदि बार-बार के खिंचाव से कठोर पत्थर पर निशान पड़ सकते हैं, तो यदि अभ्यास किया जाये, तो मैं भी बुद्धिमान क्यों नहीं हो सकता? वह पुनः गुरु के पास गया और उनसे पुनः पढ़ने की अनुमति माँगी। गुरु ने भी उसे अंतिम अवसर देते हुए गुरुकुल में रहने की अनुमति दे दी। अब वरदराज पहले से अधिक अभ्यास करने लगा और धीरे-धीरे वह एक मेधावी छात्र सिद्ध हुआ। बड़े होकर उसने संस्कृत में प्रसिद्ध 'लघुसिद्धान्त-कौमुदी' ग्रन्थ की रचना की।

अभ्यास कैसे करें

जैसा हमारा लक्ष्य हो या हमें जैसी परीक्षा देनी हो, उसके अनुसार ही हमें वैसा अभ्यास करना चाहिए। जिस प्रकार नाटक मंच पर प्रदर्शित करने से पूर्व नाटक के पात्र आपस में उसी ढंग से स्थान ग्रहण कर जब अपने-अपने संवाद कहते हैं, तब निर्देशक उनकी त्रुटियों को दूर कर उस नाटक को परिपूर्ण करता है। इसी प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में

हमें परीक्षा की भाँति ही अभ्यास करना चाहिए। जैसे यदि किसी विद्यार्थी को कोई लिखित परीक्षा देनी हो, तो उसे लिख-लिखकर अभ्यास करना चाहिए। एक खिलाड़ी को उस खेल को खेलकर अभ्यास करना चाहिए। एक गायक को गाकर अभ्यास करना चाहिए। एक साधक को जप-ध्यानादि साधनाओं का अभ्यास करना चाहिए। एक वक्ता को बोलकर अभ्यास करना चाहिए।

प्रारम्भ में अभ्यास कठिन या अरुचिकर लग सकता है, पर बाद में इसके परिणाम अत्यन्त लाभकर ही होते हैं। अत: अभ्यास का संक्षिप्त मार्ग कभी नहीं खोजना चाहिए या अभ्यास की अवहेलना नहीं करनी चाहिए। अभ्यास के द्वारा हमें अपनी त्रुटियों को दूर करते रहना चाहिए। ऐसा करते रहने से हम अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहेंगे। परन्तु अभ्यास भी निर्धारित समय और नियमपूर्वक किए जाने चाहिए। कार्य के प्रारम्भ में बहुत अभ्यास करना और बाद में छोड़ देना, इस प्रकार के अभ्यास से कभी सफलता नहीं मिल सकती। अभ्यास में धैर्य रखने की अत्यन्त आवश्यकता होती है। आलस्य का त्याग, एकाग्रता, निरन्तरता और उत्साह अभ्यास में सहायक होते हैं।

उपसंहार

अभ्यास कुशलता का मूल मंत्र है। इसी परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं – "मान लो, एक बच्चे ने पियानो बजाना शुरू किया। पहले उसे प्रत्येक परदे की ओर देखते हुए अंगुलियों को चलाना पड़ता है, पर कुछ महीनें, कुछ साल अभ्यास करते-करते अंगुलियाँ अपने आप ठीक ठीक स्थानों पर चलने लगती हैं, वह स्वाभाविक हो जाता है। एक समय जिसमें ज्ञानपूर्वक इच्छा को लगाना पड़ता था, उसमें जब उस प्रकार करने की आवश्यकता नहीं रह जाती, अर्थात् जब ज्ञानपूर्वक इच्छा लगाये बिना ही वह सम्पन्न होने लगता है, तो उसी को स्वाभाविक ज्ञान या सहज प्रेरणा कहते हैं।"[५] यह स्वाभाविक ज्ञान अभ्यास के द्वारा ही सम्भव है। हम जैसा अभ्यास करेंगे, वैसी ही हमारी प्रगति होगी। अत: आइए, हम सब अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अपने-अपने साधनों का यथासम्भव अभ्यास करें।

सन्दर्भ : १. विवेकानन्द साहित्य १/५०, **२.** विवेकानन्द साहित्य १/१२३, **३.** श्रीमद्भगवद्गीता ६/३५, **४.** श्री श्रीरामकृष्णकथामृत १/५५४ (१९ सितम्बर १८८४), **५.** विवेकानन्द साहित्य २/११५-१६

प्रेरक लघुकथा

भक्त की चिन्ता करे नियन्ता

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

करमान देश का राजा जिबाल भगवान का बड़ा भक्त था। उसकी कन्या भी उसके समान सदैव भगवत् चिन्तन में लीन रहती थी। राजा को उसके विवाह की चिन्ता हुई। वह सुयोग्य वर की खोज में निकला। उसे एक मंदिर में ध्यानमग्न एक सुन्दर, सुशील युवक दिखा। राजा ने प्रश्न पूछा, "तुम क्या करते हो?" युवक ने उत्तर दिया, "भगवान के नाम-जप में अधिकाधिक निमग्न रहना मेरी दिनचर्या का अंग है।" "क्या इससे तुम्हारा निर्वाह हो जाता है?" युवक ने उत्तर दिया, "मनुष्य के रक्षक केवल भगवान हैं। जगदीश्वर के रहते चिन्ता किस बात की?" युवक की विनम्रता, सज्जनता और भगवान पर अगाध भक्ति देख राजा प्रभावित हो गया। उसने अपना परिचय देते हुए राजकन्या से विवाह करने की इच्छा व्यक्त की।

युवक ने कहा, "कहाँ आप और कहाँ मैं ! मैं अकिंचन हूँ, मेरा जीवन सादा है। राजमहल में पली आपकी कन्या एक दीन के साथ घास-फूस की झोपड़ी में कैसे सुखी रहेगी?" राजा ने कहा, "तुम्हारे आचार-विचार और सत्य-शीलतापूर्ण व्यवहार से प्रभावित होकर ही मैंने दामाद के रूप में तुम्हें चुना है। मेरी कन्या का स्वभाव भी तुम्हारे जैसा है, सादा जीवन है, अत: वह तुम्हें अवश्य पसंद करेगी और तुम्हारे पास सुखी और प्रसन्न रहेगी।"

राजा ने दोनों का सादगी से विवाह कर कन्या को खाली हाथ विदा किया। युवक उसे मंदिर से थोड़ी ही दूर अपनी छोटी-सी झोपड़ी में ले गया। उसे बाहर पेड़ पर रोटी का एक टुकड़ा दिखा। पूछने पर युवक ने बताया, "कल रात यह टुकड़ा बच गया था। इसलिए इसे आज के लिये पेड़ पर रख दिया था।" सुनते ही कन्या बोली, "यानि आपका भगवान पर विश्वास नहीं है, इसीलिए आपने दूसरे दिन का टुकड़ा बचा लिया।" युवक ने कहा, "नहीं, तुम गलत समझ रही हो। मैं प्रतिदिन दो रोटियाँ ही माँगकर लाता हूँ। एक सुबह और एक रात को खाता हूँ। यदि बच गई, तो उसे इस पेड़ पर रख देता हूँ। यदि किसी पक्षी ने नहीं खाया, तो उसे खाकर रात को एक रोटी पक्षियों के लिए छोड़ देता हूँ।" सुनकर कन्या ने क्षमा माँगी। सुयोग्य पति के चयन हेतु वह पिता के प्रति कृतज्ञ हुई। भगवान के सच्चे भक्त अनासक्त और अटूट विश्वासी होते हैं। उन्हें जो भी मिलता है, उसे भगवान का कृपा-प्रसाद मानते हैं और उसे दूसरों में बाँटने के बाद शेष भाग से ही सन्तुष्ट और तृप्त हो जाते हैं। ○○○

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (१०)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

ऋषिकेश में स्वामीजी की बीमारी

ऋषिकेश की कुटिया में निवास करते समय स्वामीजी को निरन्तर हल्का ज्वर रहने लगा। एक दिन उनका शरीर ठण्डा हो गया और बोली बन्द हो गयी। गुरुभाइयों ने सारी आशा छोड़ दी और रो-रोकर भगवान को पुकारने लगे। सहसा कम्बल ओढ़े हुए एक साधु आये और बोले, "क्यों रोते हो?" उन्होंने एक पुड़िया दवा देकर उसे मधु के साथ खिलाने को कहा। इसके बाद वे साधु न जाने कहाँ चले गये – फिर खोजने पर किसी को भी नहीं मिले। वह दवा खिलाने के थोड़ी देर बाद ही स्वामीजी की चेतना लौट आयी, शरीर गरम हुआ और मुख से बातें निकलने लगीं।

उसी समय पूर्व-परिचित दीवान रघुनाथ भट्टाचार्य टिहरी के राजा को अजमेर के मेयो कॉलेज ले जा रहे थे। ऋषिकेश में आकर लोगों के मुख से उनके सुनने में आया कि एक महा-विद्वान् बंगाली साधु बीमार होकर यहाँ मरणासन्न अवस्था में पड़े हुए हैं। रघुनाथ बाबू ने अनुमान से समझ लिया कि वे स्वामीजी ही हैं।

वे उन्हें देखने आये और स्वामीजी को एक पत्र देकर दिल्ली में एक हकीम के पास जाने को कहा। परन्तु जाते समय सहारनपुर में उन्हें बंकू चटर्जी से पता चला कि मैं मेरठ में हूँ। इसके पूर्व हरिद्वार में उनकी स्वामी ब्रह्मानन्द से भेंट हुई थी। उन्होंने भी मुझे देखने का आग्रह किया, अत: सभी लोग मेरठ आये और चार-पाँच महीने वहीं निवास किया। वहीं पर स्वामीजी तथा मैं खूब स्वस्थ हो गये थे, परन्तु शरत् महाराज बीमार पड़ गये। निश्चय हुआ कि वे तथा सान्याल महाशय इटावा जायेंगे।

स्वामीजी की एकाकी भ्रमण की इच्छा और मेरा अनुसरण

स्वामीजी अब अकेले भ्रमण करेंगे, ऐसा कहकर वे दिल्ली चले गये। उनके दिल्ली चले जाने के दस दिनों बाद बाकी सभी लोगों ने भी दिल्ली की यात्रा की।

स्वामीजी के दिल्ली की ओर प्रस्थान करते समय मैंने उन्हें कह दिया था, "तुम्हारे ही अनुरोध पर मैं अपना मध्य-एशिया दर्शन स्थगित करके वराहनगर मठ लौट आया था और अब तुम्हीं मुझे त्यागकर चले जा रहे हो!" स्वामीजी बोले, "गुरुभाइयों के साथ रहने से तपस्या में काफी विघ्न पड़ता है। देखो न, तुम्हारी बीमारी के कारण मैं टिहरी (हिमालय) में तपस्या नहीं कर सका। गुरुभाइयों की माया काटे बिना मेरा साधन-भजन नहीं होगा। मैं जब भी सोचता हूँ कि तपस्या करूँगा, तभी ठाकुर एक-न-एक बाधा उत्पन्न कर देते हैं। अब मैं अकेले निकलूँगा। जहाँ भी रहूँगा, किसी को सूचना नहीं दूँगा।" उत्तर में मैंने कहा, "तुम यदि पाताल में भी चले जाओ, तो वहाँ से यदि मैं तुम्हें खोजकर नहीं निकाल सका, तो मेरा नाम गंगाधर नहीं।"

दिल्ली से सारदानन्द और सान्याल इटावा गये, राखाल महाराज और हरि महाराज पंजाब और वृन्दावन – ब्रजधाम चले गये। वहीं तीन-चार महीने निवास करने के बाद मुझे फिर ब्रांकाइटिस हुआ। उसी समय तुलसी महाराज (निर्मलानन्द) वृन्दावन आये। मैं उनके साथ आगरा होते हुए इटावा गया।

इटावा में पाँच महीने रहकर मैं रोग से कष्ट उठाता रहा। स्वामी त्रिगुणातीत के वहाँ आने पर तुलसी महाराज मठ लौट गये और मैं स्वामी त्रिगुणातीत के साथ आगरा गया। वहाँ से स्वामी त्रिगुणातीत व्रज चले गये और मैं स्वामीजी की खोज में जयपुर जा पहुँचा।

जयपुर में गोपीनाथजी[१] के मन्दिर में मेरी सरदार चतुरसिंह के साथ भेंट हुई। उनसे समाचार मिला कि स्वामीजी खेतड़ी के राजा को शिष्य बनाकर वहाँ दो-तीन महीने निवास करने के बाद अजमेर गये हैं। मैं जयपुर-दर्शन के बाद अजमेर गया।

१ गोपीनाथजी का मन्दिर गोविन्दजी के पीछे की गली में है। कहते हैं कि गोविन्दजी और गोपीनाथजी क्रमश: चैतन्य महाप्रभु के दो शिष्यों रूप-गोस्वामी तथा गोपाल भट्ट के इष्ट-विग्रह थे। (अनु.)

अजमेर में

सरदार चतुरसिंह ने अपने एक वृद्ध सम्बन्धी के साथ मुझे अजमेर भेजा । ट्रेन के भीतर उन वृद्ध सज्जन ने एक बटुए से अफीम का टुकड़ा निकालकर खाया और आँखें मूँदकर झपकियाँ लेने लगे । मैंने पूछा, "बटुए में क्या है?" उत्तर मिला, "अमल (अफीम) ।" मैं बोला, "आप इतना अमल खाते हैं, इसका क्या गुण है?" वृद्ध ने आँखें बन्द किये ही उत्तर दिया, "महाराज, अमल के चार गुण हैं ।" मैंने पूछा, "कौन-कौन से?" वे बोले, "अमली को कभी कुत्ता नहीं काटता, वह कभी पानी में नहीं डूबता, उसके घर में चोर नहीं आता और उसे कामिनी की नजर नहीं लगती ।" क्योंकि अफीमखोर बिना लाठी के नहीं चलता, पानी का उपयोग नहीं करता और सारी रात जगा रहता है, इसलिये चोर भी उसके घर में नहीं घुस सकता, आदि आदि ।

इसके बाद वे शिकायत के स्वर में बोले, "महाराज, अंग्रेजों के राज्य में मेरी हालत अच्छी नहीं है ।" कारण पूछने पर वे बोले, "देखिये, मेरी जो जमींदारी थी, उसका बँटवारा होते-होते मेरे लिये कुछ भी हिस्सा नहीं बचा । इधर मुझे खर्च आदि भी तो चलाना होगा । उन दिनों मैं तलवार लेकर निकलता था और कुछ कमाकर लौटता था ।" मैंने पूछा, "वह कैसे?" बोले, "यही, राहजनी करके । उसी से कुछ दिन चला । उसके बाद फिर निकला । महाराज, इसी प्रकार चला करता था । अब अंग्रेजों के राज्य में वह सब करने का कोई उपाय नहीं रह गया है !"

अजमेर में आकर सुना कि स्वामीजी अहमदाबाद गये हैं । मैं पुष्कर की ओर चला । वहाँ सारदा (त्रिगुणातीत) के साथ भेंट हुई और मैं उसके साथ अजमेर लौट आया । इसके बाद सारदा के बीमार पड़ जाने के कारण पैदल जाने में असमर्थ हो गया । लज्जा के चलते पैसे न माँग पाने के कारण मैंने बंगाली बाबुओं से कहा, "महाशय, हम लोग परसों रवाना होंगे ।"

मैंने सोचा था कि ये लोग रवाना होने की बात सुनकर स्वयं ही गाड़ी का किराया देने की इच्छा व्यक्त करेंगे । परन्तु सभी कहने लगे, "ठीक है, महाराज, ठीक है ।" किसी ने एक कानी कौड़ी भी देने का नाम नहीं लिया । परन्तु 'परसों' निकट आ रहा था और क्रमश: आ भी पहुँचा । तब मैं कहने लगा, "महाशय, हम लोग कल जायेंगे ।" इस बार भी सभी बोले, "ठीक है, ठीक है ।"

मैंने प्रतिज्ञा की थी कि कोई सहारा लेकर रास्ता नहीं चलूँगा । यदि कोई पूछकर गाड़ी का किराया देना चाहता, तो भी रुपये नहीं लेता, वह टिकट खरीद देता । पर अजमेर के बाबुओं का 'ठीक है, ठीक है' सुनकर सोचने लगा कि अब क्या उपाय हो?

इसी अजमेर में जब मैं पहली बार आया था, तो चतुरसिंह के बहनोई मौरसिंह ने कुछ रुपये देकर प्रणाम किया था, परन्तु मैंने उसका स्पर्श नहीं किया था । अब मैंने सोचकर यह निश्चय किया कि उन्हीं के पास जाकर सारदा के लिये टिकट खरीद देने का अनुरोध करूँगा । वैसा ही करना पड़ा । मौरसिंह ने मेरा अनुरोध सुनते ही तत्काल खण्डवा तक के टिकट का पैसा दे दिया । उन कुछ रुपयों को हाथ में लेकर मैंने सोचा कि अब तक मैंने लक्ष्मीजी के ऐश्वर्य की अवहेलना की है, अत: उन रुपयों को मैं अपने सिर की पगड़ी में बाँधकर ले गया । मैंने सारदा को खण्डवा भेज दिया ।

ईसाई-भक्त विलियम्स

अजमेर में मेरी ईसाई-भक्त विलियम्स के साथ भेंट हुई । वे श्रीरामकृष्ण को ईसा मसीह का अवतार मानते थे । मेरे साथ भेंट होने पर वे उनके बारे में कहने लगे, "जिस दिन मैं ठाकुर को पहली बार देखने गया था, उस दिन उन्होंने मेरे बैठने के लिए एक चटाई बिछा दी थी और स्वयं भी एक चटाई बिछाकर बैठते हुए बोले, 'देखो, (दोनों चटाइयों के बीच) एक अंगुल की दूरी रख दी है ।' मैंने कहा, 'दोनों की चटाइयों के बीच एक अंगुल की दूरी है, परन्तु हृदयों के बीच कोई दूरी नहीं रही ।' वे ठाकुर को देखकर ईसा के भाव में मुग्ध हो गये थे और उनसे विशेष धर्म-प्रेरणा प्राप्त की थी ।

राजपुताना, आबू, गुजरात, बड़ौदा

सारदा को भेजने के बाद मैं सोचने लगा कि पैदल चलकर तो स्वामीजी को पकड़ा नहीं जा सकेगा, परन्तु ट्रेन से जाने की व्यवस्था कैसे हो? दैवयोग से एक व्यक्ति ने आठ आने देकर मेरे लिये ब्यावर के लिए टिकट खरीद दिया । वहाँ पहुँचकर सुना कि स्वामीजी आये थे, परन्तु वहाँ से अजमेर चले गये ।

ब्यावर से मैंने आबू की यात्रा की । लोग जैसे-जैसे टिकट खरीद देते, मुझे उसी के अनुसार यात्रा करनी पड़ती थी । आबू के द्रष्टव्य स्थानों को देखने के बाद मैंने अहमदाबाद

शेष भाग पृष्ठ ४६१ पर

नारी-शक्ति का आदर्श – माँ सारदा

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

माँ की महिमा जितनी भी कही जाए, वह कम ही होती है, क्योंकि वह स्वमहिमा में प्रतिष्ठित होती है। संसार की दृष्टि से यदि हम स्वयं से प्रश्न पूछें कि क्या अपनी माँ के विषय में हम सब कुछ जानते हैं? माँ के विषय में हमको उतना ही ज्ञान है, जितना माँ ने हमको बताया। कोई बड़ा पण्डित, ज्ञानी क्यों न हो, माँ ने ही उसे संस्कार दिये, उसे पाल-पोसकर बड़ा किया, पैरों पर खड़ा होने योग्य बनाया। हम माँ की कृपा से ही बुद्धि से उनका आकलन कर पाते हैं। ये जगन्माता हैं, जो सब कुछ सारे विश्व के लिये करती हैं और हमको उतनी ही बुद्धि देती हैं, जितनी हमें आवश्यकता है। उनकी लीलाओं को समझना कठिन है, फिर भी बुद्धि के अनुसार हम थोड़ी चर्चा करेंगे।

बेलूड़ मठ में १९८० में रामकृष्ण संघ का एक महासम्मेलन हुआ था। उसमें रामकृष्ण भावधारा के सारे विश्व के प्रतिनिधि आये थे । अमेरिका से भी बहुत-से प्रतिनिधि आये थे। बहुत-सी अमेरिकी भक्तिमती माताएँ-बहनें आयी थीं। उनके साथ अमेरिका के एक स्वामीजी आये थे, जो मेरे घनिष्ठ थे । उन्होंने उन लोगों से कहा कि जो प्रश्न पूछना है, इन स्वामीजी से पूछो। उन लोगों ने मुझसे एक प्रश्न पूछा – स्वामीजी, यह बताइये कि स्वामी विवेकानन्द ने कहा था और आप लोग भी कहते हैं कि श्रीमाँ सारदा देवी विश्व की नारियों का आदर्श हैं। हम लोग यहाँ के भक्त हैं, अमेरिका में रामकृष्ण मिशन के सम्पर्क में आये हैं। हमलोगों को यह बात समझ में नहीं आती कि माँ सारदा तो गाँव में रहकर ग्रामीण या भारतीय ढंग से जीवन बिताती थीं। वे पाश्चात्य, अमेरिका या यूरोप की नारियों का आदर्श कैसे हो सकती हैं?

प्रश्न सुनकर बड़ा कठिन लगता है, किन्तु समीचीन भी लगता है कि गाँव में रहनेवाली, जयरामबाटी की एक बाला, जो मनिआर्डर जब आता था, तो अंगूठा लगाकर प्राप्त करती थी, वह पाश्चात्य नारी-जीवन का आदर्श कैसे हो सकती है?

यदि हम माँ के जीवन पर एक विहंगम दृष्टि डालें, तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगी कि सचमुच नारीत्व की पूर्णता उनमें अवतरित हुई थी। भारतीय दृष्टि से विचार करें, तो हमारे यहाँ नारी के तीन स्वरूप हैं। पिता के घर में कन्या के रूप में, ससुराल में सहधर्मिणी और फिर माँ के रूप में। नारीत्व की पूर्णता इस मातृत्व में होती है।

उन पाश्चात्य बहनों से यह बात कही गयी कि आप कन्या की अवस्था को पार कर गयी हैं । वहाँ की अलग व्यवस्था है। वहाँ बच्ची जब एक या दो वर्ष की हो जाती है, तब उसका कमरा अलग हो जाता है, उसकी सारी व्यवस्थाएँ अलग हो जाती हैं। बारह-तेरह वर्ष की होने पर वह स्वाधीन हो जाती है। उस देश में कन्या का सेवा पक्ष विशेष महत्त्वपूर्ण नहीं है। वहाँ सहधर्मिणी की धारणा नहीं है।

हमारे यहाँ सहधर्मिणी का जो तात्पर्य है, वह अंग्रेजी के 'वाइफ़' शब्द में नहीं है। आप यदि अंग्रेजी शब्दकोष देखें, तो पायेंगे कि उनके कानून में 'वाइफ' का जो तात्पर्य है, वह हमारे 'सहधर्मिणी' के आसपास भी नहीं जाता। वहाँ स्त्री-पुरुष के बीच में एक वैवाहिक अनुबन्ध जैसा है। किन्तु हमारे यहाँ भारत में अग्नि को साक्षी देकर सप्तपदी के बाद जब वर-कन्या का वरण पति-पत्नी के रूप में किया जाता है, तो उसका सम्बन्ध जन्म-जन्मान्तर का हो जाता है। कब तक के लिये? जब तक कि दोनों की मुक्ति न हो जाये।

एक बालिका विवाह के बाद जब सहधर्मिणी बनती है, तो उसका कर्तव्य क्या है? 'सह' माने 'साथ', 'धर्मिणी' माने 'जो धर्म का पालन करे'। अर्थात् पति का जो धर्म है, उस धर्म का वह पालन करे। माँ सारदा के जीवन में यह आदर्श बड़ा स्पष्ट दिखाई पड़ता है। पति और पत्नी का क्या धर्म है, यह बात जब हमारे सामने स्पष्ट नहीं होगी, तो नारी के आदर्श के विषय में हम ठीक-ठीक धारणा नहीं कर पायेंगे। हमारे ऋषियों ने चिरकाल के लिए मनुष्य जीवन का उद्देश्य निश्चित कर दिया है और वह है – मोक्ष। मोक्ष सुनकर हमें डरना नहीं चाहिए। बहुत बार मोक्ष सुनते हुए हम लोग डर जाते हैं – 'अरे ये तो साधु-संन्यासियों का काम है, तपस्वियों का काम है, यह हमारे लिए नहीं है।''

आप-हम सभी जो जहाँ हैं, जिस स्थिति में हैं, उस स्थिति से हम अच्छा होना चाहते हैं। कौन ऐसा है, जो उससे अच्छा

न होना चाहे। हम वर्तमान स्थिति से उन्नत हों, विकसित हों, सभी चाहते हैं। विकास का क्या अर्थ है? इसका अर्थ है – सीमाओं को छोड़ना। अगर जमीन में पड़ा वट का बीज अपनी सीमाओं को न छोड़े, तो क्या वह किसी दिन वृक्ष हो सकता है? बीज को अपनी सीमा छोड़कर अंकुर बनना पड़ेगा। अंकुर को अपनी सीमा से ऊपर उठकर पौधा होना पड़ेगा और पौधा अपनी सीमा छोड़ेगा, तभी वह वृक्ष बन सकेगा। अपने आप में एक महा वट वृक्ष की सम्भावना होने पर यदि बीज अपनी सीमा में सिमटा रहे, तो वह कभी वृक्ष नहीं हो सकेगा। उन्नति का अर्थ ही है कि सीमाओं को छोड़कर अधिक-से-अधिक फैलना, बड़ा होना।

अब सोचिए, कौन बड़ा नहीं होना चाहता? कौन ऐसा है, जो अधिक-से-अधिक उन्नत नहीं होना चाहता? हम सभी उन्नत होना चाहते हैं। जहाँ उन्नति पूर्ण हो जाय, जिसके बाद उन्नति की सम्भावना न रहे, उसका नाम मोक्ष है। मोक्ष से डरने की बात नहीं है। मोक्ष का तात्पर्य है – हम असीम हो जायँ। कोई भी सीमा हमको मुक्त नहीं कर सकती। बड़े-से-बड़ा पद, बड़े-से-बड़ा धन और सम्मान भले ही हमें मिल गया हो, पर कहीं-न-कहीं सीमा रह जायेगी। जब सम्पूर्ण विश्व-ब्रह्माण्ड हमारे भीतर समा जाये और हम उसमें ओतप्रोत हो जायें – 'विश्वं भवति एकनीडम्' हो जायें, – उसका नाम मुक्ति है। ऐसी मुक्ति तो हम सभी चाहते हैं।

भगवान श्रीरामकृष्ण देव की बहन और हृदय की माँ सिहोर नामक गाँव में रहती थीं। सिहोर कामारपुकुर से अधिक दूर नहीं है। श्रीरामकृष्ण देव जब गाँव में रहते थे, तो वहाँ अपनी बहन के यहाँ जाया करते थे। एक बार श्रीरामकृष्ण देव किसी उत्सव में वहाँ गये थे। यह सिहोर ग्राम माँ सारदा का ननिहाल था। उस उत्सव में दो वर्ष की (सारू) सारदामणि भी किसी महिला की गोद में बैठी थी। श्रीरामकृष्ण भी वहाँ बैठे थे। सभी लोग बैठे हैं।

किसी महिला ने विनोद में सारू से पूछा – "अरे यहाँ इतने लोग बैठे हैं, तू किससे विवाह करेगी?" तो उसने अपने छोटे हाथ श्रीरामकृष्ण देव की ओर दिखा दिये।

इसके कुछ वर्ष बाद श्रीरामकृष्ण देव दक्षिणेश्वर में जगन्माता की साधना में मत्त हो गये। वे साधना में इतने डूब गये कि संसार के लोग उनको पागल समझने लगे। सच्ची बात तो यह है कि संसार में कौन पागल नहीं है। संसार के लोग जिस अन्धी दौड़ में दौड़ रहे हैं, उनके साथ अगर हम न चलें, तो लोग हमको पागल कहते हैं और आज भी ऐसे बहुत से सज्जन हैं, जो हम लोगों को पागल समझते हैं। लोग मनोविज्ञान के विभिन्न तर्कों से सिद्ध कर देते हैं कि आप लोग विकृत हैं।

श्रीरामकृष्ण देव दिन-रात 'माँ-माँ' करके ध्यान में मग्न हैं। स्नान-भोजन-शयन, वस्त्रादि किसी की चिन्ता नहीं है। दिन-रात 'माँ-माँ कहकर पागल हैं। पूजा कर रहे हैं। एकदम डूबे हुए हैं।

श्रीरामकृष्ण देव के पागलपन की बात सब जगह फैल गयी। लोग कहने लगे कि चटर्जी पागल हो गया है। चन्द्रामणि देवी ने सुना। उन्होंने श्रीरामकृष्ण देव को कामारपुकुर आने की सूचना भेजी। बालस्वभाव श्रीरामकृष्ण गर्भधारिणी माँ से मिलने कामारपुकुर आ गये। उनकी माँ ने देखा कि ऐसा पागल तो नहीं है, जैसा लोग कहते हैं। यह अपने ढंग से रहता है। संसार का सामान्य नियम है कि पुत्र के युवा होने पर माताएँ उसके विवाह की बात सोचती हैं। चन्द्रामणि ने भी सोचा कि विवाह करने से इसका मन संसार में लगा रहेगा, इधर-उधर भटकना बन्द हो जायेगा। विशेषकर माताएँ समझती हैं कि विवाह कर देने से सब रोग दूर हो जायेगा। श्रीरामकृष्ण देव की माता को भी ऐसा लगा कि मेरे बेटे गदाई का जो पागलपन है, वह तभी दूर होगा, जब उसके गले में गृहस्थी की घण्टी बाँध दी जाय। पर वह गदाई के स्वभाव को जानती थीं। कहीं इसको पता चल गया, तो यह विवाह करने से नहीं कह देगा। इसलिए गुप्त रूप से बड़े बेटे रामकुमार से श्रीरामकृष्ण के विवाह की बात चलाई। बड़े भाई रामकुमार कई जगह ब्राह्मण परिवारों में सुकन्या ढूँढ़ते-ढूँढ़ते परेशान और निराश हो गये।

श्रीरामकृष्ण देव को इस योजना की जानकारी हुई। उन्होंने यह नहीं कहा कि मैं विवाह नहीं करूँगा, लड़की मत ढूँढ़ो। उन्होंने कहा, "अरे, तुम लोग इधर-उधर कहाँ ढूँढ़ रहे हो, जयरामबाटी में रामचन्द्र मुखर्जी के घर कन्या चिह्नित है।" जब रामकुमारजी ने जाकर वहाँ देखा, तो सचमुच रामचन्द्र मुखर्जी की एक बड़ी सुशीला कन्या थी। पर समस्या यह थी कि कन्या छः वर्ष की बालिका थी और श्रीरामकृष्ण देव तेईस वर्ष के हैं। किन्तु कन्या चिह्नित थी, इसलिये सभी वैवाहिक विधि-विधान के साथ श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा का विवाह हो गया। **(क्रमशः)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (७२)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – तीनों गुणों के क्रिया-कलाप क्या महाराज लोगों के जीवन में भी दिखाई पड़ता था?

महाराज – राजा महाराज एक बार कई दिनों तक बस बैठे ही रहते – स्नान, भ्रमण कुछ भी नहीं होता। पेट के चमड़े की सिलवटों में घाव हो गया। तब शरत् महाराज उन्हें बलपूर्वक पकड़कर स्नान कराकर, भ्रमण करा लाते। उनके शरीर में तमोगुण आ गया था। उन्होंने स्पष्ट रूप से देखा था – शरीर में तमोगुण आ गया है, तब उस अवस्था में कोई प्रयत्न नहीं होता।

हमारा जीवन ठीक एक इस्पात की तरह है। उसे बलपूर्वक दबाकर रखे हो, तो वह क्रमश: फैलने का प्रयत्न करता है। धर्म 'भूत भवोद्भवकर' है – जीवित रहना और उन्नति करना। मोक्ष इसके बाद की वस्तु है – जीवित रहते हुए भी उन्नति से परे जाने की स्थिति। इन सब तत्त्वों को समझना बहुत कठिन है। इस धरती पर लोग दिन-रात कितना कष्ट पा रहे हैं ! भगवान को सृष्टिकर्ता कहने से बहुत प्राणघातक बात हो जाती है। असली बात यह है कि जब हमलोग 'चला गया' 'चला गया' कहते हुए चीत्कार करते हैं, तब ज्ञानी लोग देखते हैं कि लोग मिथ्या क्रन्दन कर रहे हैं, उनका कुछ भी नहीं गया। स्वप्न में 'आग' 'आग' कहते हुए कष्ट पा रहे हैं, जबकि उनकी कोई भी क्षति नहीं होती।

प्रश्न – मास्टर महाशय और स्वामीजी, दोनों की कर्म के सम्बन्ध में एक समान धारणा क्यों नहीं है?

उत्तर – मास्टर महाशय रामकृष्ण मिशन को नहीं समझ सके। उन्होंने ठाकुर से सुना था – पहले ईश्वर, बाद में कर्म। किन्तु ठाकुर यह बात उन लोगों से कहते हैं, जो पूर्णत: सतोगुणी हैं। किन्तु स्वामीजी ने सम्पूर्ण भारतवर्ष का व्यापक भ्रमण करके देखा कि सारा देश तमोगुण से आच्छन्न है। पहले देश में रजोगुण लाने की आवश्यकता है। इसलिए स्वामीजी ने कर्म को प्रारम्भ किया। अपने-चारों ओर देख रहे हो न? रजोगुण नहीं रहने पर इन सबकी क्या दशा होती? संन्यास लोकप्रिय होने से ही सतोगुणी लोग आराम से रहने के लिये, रजोगुणी लोग वीरता का और तमोगुणी लोग सत्वगुण का मुखौटा लगाकर जीवन बिताते हैं।

२३-४-१९६१

प्रश्न – 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' में हमलोग ठाकुर को विभिन्न भावों में देखते हैं, किन्तु हमारी साधना-प्रणाली के साथ तो कोई मेल नहीं दिखता।

महाराज – ठाकुर की परमहंस अवस्था में दास्य, सख्य, वात्सल्य भाव दिखाई पड़ता था, मधुर भाव नहीं था। नहीं था, ऐसा कैसे कहें ! भावावस्था में जगन्नाथजी का आलिंगन करने के लिये अग्रसर होने पर उनका हाथ टूट गया था। किन्तु साधक अवस्था में मधुर भाव की साधना उन्होंने की थी। ठाकुर का ऐसे शान्त भाव है। जब गदाई के रूप में छोटे बच्चे हैं, तब वात्सल्य भाव है, जब माणिकराजा के आम के बगीचे में खेल रहे हैं, तब सख्य भाव। कुछ दिनों तक गदाई के साथ सख्य भाव में क्रीड़ा करो। माणिकराजा के आम के बगीचे में कविता-पाठ करो। मन में सारे दिन का एक मूल भाव तैयार करो।

मन अनेक प्रकार का होता है। किसी का मन दिनभर अंट-संट बातों का चिन्तन करता है। किसी का मन सारे संसार की राजनीति करते रहता है। मन में एक मूल भाव ठीक तरह से है क्या? सारे दिन चलते-फिरते, 'मैं देह-मन-बुद्धि नहीं हूँ', ऐसा चिन्तन है क्या?

कई लोग कहते हैं, जो अखण्ड सच्चिदानन्द हैं, वे साढ़े तीन हाथ का मनुष्य कैसे हो गए, समझ में नहीं आता।

किन्तु यह बात गलत है। वे अखण्ड सच्चिदानन्द मनुष्य क्यों होंगे? वे मनुष्य का आवरण बनाकर उसके माध्यम से अपनी बात कहते हैं, जैसे छत का पानी बाघ के मुखौटे से गिर रहा है। यह बात कैसे समझोगे या समझाओगे? इसीलिए ऐसा कहा जाता है। जो राधा-कृष्ण हुए थे, वे ही गौरांग-विष्णुप्रिया हुए थे और वे ही रामकृष्ण-सारदा हुए हैं।

२५-४-१९६१

प्रश्न – महाराज, उस दिन आपने कहा था कि देश तमोगुण-प्रधान था, इसीलिए स्वामीजी ने सेवाकार्य प्रवर्तित किया है। क्या ठाकुर-स्वामीजी की वाणी से समाज की कोई उन्नति हो रही है? क्या व्यक्ति के जीवन में कोई विकास हो रहा है?

महाराज – चैतन्य के संस्पर्श से मनुष्य का विकास होता है। ठाकुर-स्वामीजी की पुस्तकें तो उनके पत्र, उनके संदेश ही हैं, इन पत्रों के माध्यम से भी चैतन्य के साथ जुड़ाव होता है। हम लोग इनके दूत हैं।

जब कोई आन्दोलन लोकप्रिय होता है, तो आस-पास के लोग आकर जुड़ जाते हैं। यहाँ तो हजारों वर्षों की पराधीनता के कारण कोई नेता नहीं बन सका। सभी गुलाम बनकर रह गये। दस लोगों के साथ मिल-जुलकर रहना, ये लोग नहीं जानते। फिर साधु कोई आकाश से टपक कर तो नहीं आते हैं। गृहस्थों के घरों मे ही जन्म लेते हैं। मैंने ऐसे किसी पिता की बात नहीं सुनी है, जो बच्चों के मंगल-अमंगल के बारे में सजग रहते हों। कोई-कोई पुरानी प्रणाली को बलपूर्वक आरोपित कर असफल होते हैं, उनमें कोई सहृदयता नहीं है।

प्रश्न – क्या मुसलमानों के आक्रमण के पहले भारत की शासन व्यवस्था अच्छी थी?

महाराज – क्या परिस्थिति हो गयी थी ! ब्राह्मण केवल यज्ञ-ही-यज्ञ कर रहे थे ! उसके साथ पशु-वध, मद्य और मांस जुड़ गया था। बीभत्स दृश्य था ! ब्राह्मणों में भी विभिन्न श्रेणियाँ हैं। कोई है कि बलि देने के लिए सबसे आगे रहता है। हमारे गुरुपुत्र को कछुए की बलि के समय बुलाया जाता था। मैंने भी एक बार बलि के समय बकरे का पैर पकड़ा था। उसके बाद छः मास तक मांसाहार नहीं कर सका। **(क्रमशः)**

बीती बातें बीते पल

मेहतर का कार्य

ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य

स्वामी विवेकानन्द कहते हैं –"प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है। बाह्य एवं अन्तःप्रकृति को वशीभूत करके अपने इस ब्रह्मभाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। कर्म, उपासना, मनःसंयम अथवा ज्ञान, इनमें से एक से अधिक या सभी उपायों का सहारा लेकर अपने ब्रह्मभाव को व्यक्त करो और मुक्त हो जाओ। बस, यही धर्म का सर्वस्व है। मत, अनुष्ठान पद्धतियाँ, शास्त्र, मन्दिर अथवा अन्य बाह्य क्रिया-कलाप तो उसके गौण ब्योरे मात्र हैं।"

स्वामीजी ने ईश्वरप्राप्ति के लिये चारों योगों – कर्मयोग, भक्तियोग, राजयोग तथा ज्ञानयोग को उपाय बतलाया है। साधक अपनी प्रकृति के अनुसार किसी भी मार्ग का अवलम्बन करके ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। परन्तु रामकृष्ण मठ एवं मिशन में इन चारों योगों का समन्यव करते हुए ईश्वर प्राप्ति के लिए प्रयास किया जाता है।

स्वामीजी एक जगह कहते हैं कि वही व्यक्ति श्रीरामकृष्ण का सच्चा अनुयायी है, जिसने अपने जीवन में इन चारों योगों का समवन्य किया है। श्रीरामकृष्ण देव का जीवन भी इन चारों योगों के समन्वय से परिपूर्ण है।

मठ-मिशन में विभिन्न प्रकार के सेवाकार्य किये जाते हैं। कोई भी कार्य छोटा-बड़ा नहीं है। उपासना की दृष्टि से सभी कार्य समान रूप से करणीय एवं श्रेष्ठ हैं।

बात उन दिनों की है, जब स्वामीजी ने बेलूड़ मठ की स्थापना की। बाली की नगरपालिका ने बेलूड़ मठ को विवेकानन्द का उद्यान बता कर उस पर अत्यधिक टैक्स लगा दिया था। सारे अनुरोधों के अस्वीकृत होने पर मठ के संचालकों ने मुकदमा दायर किया। नगरपालिका के निर्देश पर मेहतरों ने मठ के शौचालय की सफाई बन्द कर दी। दुर्गन्ध से वहाँ की वायु तक दूषित हो गयी थी। एक दिन दोपहर के समय स्वामी बोधानन्द तथा एक अन्य व्यक्ति ने चुपचाप मेहतर का कार्य पूरा कर दिया। मठ के रसोइये ने यह सूचना बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द जी) को दे दी। उन्होंने उन लोगों को बुलाकर कहा, "जा जा गंगा में जा। तुम लोग गन्दे हो, अब कभी ठाकुर का काम मत करना।"

शेष भाग पृष्ठ ४७५ पर

गाँधीजी की महानता

मैट्रिक पास करने के बाद गाँधीजी बैरिस्टरी पढ़ने के लिए विदेश जाना चाहते थे। उनकी माँ पुतलीबाई किसी भी प्रकार अपने बेटे को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हो रही थीं। वे पूजा-पाठ, व्रत इत्यादि वैष्णव आचारों का बड़ी भक्ति से पालन करती थीं। उन्हें लगता था कि विदेश जाने से उनका बेटा कहीं कुसंगति में न पड़ जाए। किन्तु अपने बेटे की तीव्र इच्छा को देखते हुए उन्होंने अनुमति दी। उन्होंने गाँधीजी से विदेश जाने के पूर्व तीन प्रतिज्ञाएँ कराई थीं। वे माँसाहार ग्रहण नहीं करेंगे, मदिरा सेवन नहीं करेंगे और परस्त्री को माँ-बहन के समान मानेंगे। अपनी माँ को वे बहुत मानते थे। तीन साल विदेश में रहकर उन्होंने अक्षरश: इन प्रतिज्ञाओं का पालन किया। बैरिस्टर बनने के बाद वे भारत लौटे। उन्हें लगा था कि वे अपनी माँ से कहेंगे कि उनकी दी हुई प्रतिज्ञाओं का उन्होंने पूरी तरह पालन किया। किन्तु उनकी माँ उनके आने के पहले ही इस संसार से चल बसी थीं।

अपनी शिक्षा पूरी करने के बाद गाँधीजी ने पूरा जीवन राष्ट्र-सेवा के लिए समर्पित कर दिया था। भारत तब अंग्रेजों के अधीन था। भारत को आजादी दिलाना, देश में शिक्षा का प्रसार करना, अस्पृश्यता का निवारण करना, स्वदेशी आन्दोलन की स्थापना करना, अन्य देशों में बसे भारतीयों को उनके अधिकार दिलाना, नारी-शिक्षा का प्रसार करना इत्यादि अनेक कार्यों में गाँधीजी का महत्त्वपूर्ण योगदान था। उन्होंने अपने-आप को गरीबों से एक कर लिया था। देश के दुखी-निर्धनों की पीड़ा का वे अनुभव करते थे, केवल उसे अनुभव ही नहीं करते थे, उसे दूर करने का भी प्रयत्न करते थे।

गाँधीजी का नाम लेते ही हमारे मन में उनकी कमर पर कपड़ा लपेटे हुई छबि आती है। गाँधीजी जब बैरिस्टरी पढ़ने के लिए विदेश गए, तो कोर्ट-पैन्ट की पोशाक में गए थे। भारत जब लौटे, तो पगड़ी वाली गुजराती पोशाक पहनते। उन्होंने जब देखा कि उनके देश के लोगों को तन ढकने तक का कपड़ा नहीं मिलता, तो उन्होंने भी कीमती वस्त्रों का त्याग कर दिया। केवल धोती के समान एक छोटा-सा कपड़ा पहनते थे।

गाँधीजी एकबार स्कूल देखने गए थे। एक लड़के ने उनसे पूछा, ''आप कुर्ता क्यों नहीं पहनते? मैं अपनी माँ से कहूँगा, तो वह आपके लिए एक कुर्ता सी देगी। मेरी माँ के हाथ का कुर्ता आप पहनेंगे ना?''

गाँधीजी ने कहा, ''अवश्य पहनूँगा, किन्तु मैं अकेला नहीं हूँ?''

लड़के ने कहा, ''कितने कुर्ते लगेंगे? मेरी माँ दो कुर्ते सी देगी ?''

''बेटा, मुझे चालीस करोड़ कुर्ते चाहिए। जब देश की चालीस करोड़ जनसंख्या के लिए पहनने को कपड़ा रहेगा, तब मैं भी कुर्ता पहनूँगा।''

गाँधीजी चाहते थे कि भारतीय भारत में बना हुआ कपड़ा ही पहनें। इससे लोगों को रोजगार मिलेगा और वे स्वावलंबी होंगे। इसलिए उन्होंने घर-घर में चर्खे चलाने के लिए लोगों से कहा। उन्होंने अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताएँ भी कम कर दी थीं । शरीर नीरोग रहे और वह देशसेवा के लिए काम आ सके, वे उतना ही ध्यान शरीर पर देते थे । उनके लिए कोई कार्य छोटा-बड़ा नहीं था । जहाँ तक सम्भव हो, अपना प्रत्येक कार्य वे स्वयं करते थे ।

एक बार गाँधीजी वर्धा में राजनीतिक पार्टी की कार्य समिति की सभा में थे। वहाँ पर जवाहरलाल नेहरू एवं अन्य गणमान्य व्यक्ति भी थे। अचानक गाँधीजी सभा छोड़कर पास के स्थान सेवाग्राम जाने लगे। वहाँ वे अपने एक परिचित कुष्ठ रोगी के घाव साफ करते थे। जवाहरलाल नेहरू को शायद यह पता नहीं था कि गाँधीजी वहाँ क्यों जा रहे हैं। उन्होंने खीझकर पूछा, ''क्या स्वराज्य और कार्य समिति से बढ़कर कार्य सेवाग्राम में है?'' बापू ने दृढ़तापूर्वक कहा, ''हाँ, मेरे लिए वह स्वराज्य से भी बढ़कर है।'' ○○○

पतंजलि के अनुसार चित्त की वृत्तियाँ

स्वामी ब्रह्मेशानन्द

रामकृष्ण अद्वैत आश्रम, वाराणसी

अब स्वाभाविक ही यह प्रश्न उठता है कि चित्तवृत्तियाँ क्या है। पतंजलि अगले सात सूत्रों में चित्तवृत्तियों का वर्णन करते हैं। पतंजलि ने योगसूत्र के समाधिपाद में चित्तवृत्तियों को बताया है – **वृत्तय: पंचतय्य: क्लिष्टाक्लिष्टा: ।**[१]

अर्थात् वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं और वे पाँचों पुन: क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट इन दो प्रकार की होती हैं। इस तरह चित्त की सतह पर उठ रहीं वृत्तियाँ कुल दस प्रकार की हो सकती हैं। वैसे चित्तवृत्तियाँ असंख्य प्रकार की हो सकती हैं, लेकिन पतंजलि इन्हें इन दस प्रकारों में विभक्त करते हैं –

प्रमाण-विपर्यय-विकल्प-निद्रा-स्मृतय: ।[२]

अर्थात् वृत्तियाँ पाँच प्रकार की होती हैं – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति।

प्रमाण का अर्थ है यथार्थ ज्ञान, जो ज्ञान वस्तु या विषय के सत्य के अनुरूप हो। विपर्यय अर्थात् मिथ्या ज्ञान, जो सत्य के अनुरूप नहीं होता। विकल्प अर्थात् कल्पना। निद्रा और स्मृति को हम जानते ही हैं। इन सबकी परिभाषा पतंजलि अगले पाँच सूत्रों में करेंगे।

चित्तवृत्तियों के विभाजन की पतंजलि की अपनी शैली है। प्रथम दो वृत्तियाँ प्रमाण और विपर्यय, बाह्य वस्तु-विशेष से सम्बन्धित हैं। तीसरी और चौथी वृत्तियाँ, बाह्य विषय निरपेक्ष केवल मन से सम्बन्धित हैं। अंग्रेजी में कहें, तो प्रथम दो objective वृत्तियाँ हैं जबकि तीसरी और चौथी subjective हैं। निद्रा में अभाव रूप वृत्ति चित्त में रहती है। अब इनका विस्तृत विवरण अगले सूत्र में देखें –

प्रत्यक्षानुमानागमा: प्रमाणानि ।।[३]

अर्थात् प्रमाण तीन प्रकार के हैं – प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

प्रत्यक्ष प्रमाण क्या है? इन्द्रियों के माध्यम से प्राप्त सत्य ज्ञान। जैसे हमने एक गाय देखी। गाय को देखने से चित्त में जो गाय रूपी चित्तवृत्ति उदित हुई, वह प्रत्यक्ष प्रमाणरूपी चित्त वृत्ति कहलाएगी। इसी प्रकार अन्य ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से प्राप्त सत्य ज्ञानयुक्त वृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्रत्यक्ष शब्द दो शब्दों का समास है – प्रति+अक्ष, अक्ष अर्थात् नेत्र। यह शब्द सभी अन्य ज्ञानेन्द्रियों का भी द्योतक है। एक भिन्न शब्द है 'परोक्ष' – अर्थात् जो ज्ञान, पर याने दूसरे के, अक्ष याने नेत्र से पाया जाय। दूसरा व्यक्ति जब हमें कुछ कहता है, तो उससे जो ज्ञान प्राप्त होता है, वह परोक्ष ज्ञान है। एक और शब्द है 'अपरोक्ष'। यह एक विलक्षण शब्द है। 'अ+परोक्ष' अर्थात् जो ज्ञान दूसरे के अक्ष या इन्द्रिय से प्राप्त न हो, किन्तु जो प्रत्यक्ष भी न हो, किन्तु सत्य हो। ब्रह्म साक्षात्कार, ईश्वर दर्शन, समाधि में प्राप्त ज्ञान आदि अपरोक्ष ज्ञान कहलाते हैं। क्योंकि इनमें बाह्य इन्द्रियाँ काम नहीं करती हैं और किसी दूसरे व्यक्ति से भी यह ज्ञान नहीं प्राप्त होता है। यही नहीं, यह ज्ञान अनुमान और आगम प्रमाण से भी भिन्न होता है, जिसकी चर्चा हम अभी करेंगे। अनुमान में एक मानसिक प्रक्रिया होती है, किन्तु अपरोक्ष ज्ञान में तो वह भी नहीं होता। याने अपरोक्ष ज्ञान मन और इन्द्रियों की अपेक्षा नहीं रखता, उनसे निरपेक्ष रहता है। इसे एक दृष्टान्त द्वारा समझने का प्रयत्न करें।

जब स्वामी विवेकानन्द ने श्रीरामकृष्ण से पूछा कि क्या आपने ईश्वर को देखा है? तो श्रीरामकृष्ण ने कहा था, ''हाँ मैंने ईश्वर को देखा है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार मैं तुझे देख रहा हूँ, उससे भी स्पष्टतर रूप में मैं ईश्वर को देखता हूँ।'' सामान्यत: हम नेत्रों से किसी वस्तु को स्पष्ट रूप से देखते हैं। इससे स्पष्टतर दर्शन का क्या अर्थ है? इसका यही अर्थ है कि वस्तु मन और इन्द्रिय के माध्यम के बिना दिखाई दे। यह तभी हो सकता है, जब द्रष्टा दृश्य के साथ एक हो जाय, जब मन और इन्द्रियों का माध्यम या व्यवधान न रहे। इसी को अपरोक्ष दर्शन या ज्ञान कहते हैं। यह चित्तवृत्ति के परे की स्थिति है।

दूसरा **अनुमान प्रमाण** है। इसका एक दृष्टांत है, धुएँ को देखकर अग्नि का अनुमान करना।

जब सत्य ज्ञान रूपी वृत्ति का उदय अन्य किसी के द्वारा कहे जाने पर होता है, तब उसे **आगम प्रमाण** कहते हैं। एक कार को हमने देखा, उसकी आवाज से अनुमान लगाया और किसी ने आकर कहा कि कार आ गई है, ये तीन प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम प्रमाणों के दृष्टान्त हैं। इन

प्रमाणों में कभी-कभी विशेष भी हो सकता है, जिसका एक मजेदार दृष्टान्त श्रीरामकृष्ण दिया करते थे। एक व्यक्ति ने आकर अपने मित्रों से कहा कि मैंने देखा कि अमुक स्थान पर एक मकान ढह गया है और उसमें बहुत-से लोग दब गये हैं। इस पर उसके एक मित्र ने समाचार पत्र उलट-पलट कर देखा और कहा कि इसमें तो ऐसी कोई खबर नहीं है, अत: तुम्हारी बात सत्य नहीं हो सकती।

आगम प्रमाण एवं अन्य प्रमाणों के पारस्परिक विरोध का विषय विशेषकर ब्रह्म या अतीन्द्रिय आध्यात्मिक सत्यों के सम्बन्ध में अधिक प्रबल रूप से प्रकट होता है। शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म, ईश्वर आदि सत्य हैं तथा उनका साक्षात्कार किया जा सकता है। किन्तु हम इन सत्यों को प्रत्यक्ष या अनुमान द्वारा नहीं जान पाते। धर्म और विज्ञान के झगड़े का भी यह एक कारण है। ऐसे में हमें शास्त्रों को आगम प्रमाण मानकर उनकी बातों को सत्य मानना ही श्रेयस्कर है।

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।।[४]

अर्थात् विपर्यय मिथ्या ज्ञान है, जो वस्तु के सत्य स्वरूप पर प्रतिष्ठित नहीं होता। अर्थात् वह वास्तविकता या सत्य के अनुरूप नहीं होता। जैसे रास्ते में रस्सी पड़ी है, लेकिन हम उसे सर्प समझ बैठते हैं। मरुभूमि में जल नहीं है, लेकिन भ्रम से हमें वहाँ जल दिखाई देता है, ये विपर्यय या भ्रम के प्रसिद्ध दृष्टान्त हैं। मरीचिका में जल की प्रतीति प्राय: सभी को होती है। लेकिन ऐसे भी दृष्टान्त हैं, जहाँ एक ही वस्तु में विभिन्न लोगों को भिन्न-भिन्न भ्रान्ति होती है। किसी कम प्रकाशित स्थान में लकड़ी का एक ठूँठ गड़ा है। उसे देखकर चोर को सिपाही होने का भ्रम होता है। सिपाही उसे चोर समझता है। प्रेयसी से मिलने को व्यग्र एक प्रेमी इसे अपनी प्रेयसी समझ बैठता है। तात्पर्य यह है कि विपर्यय का एक कारण हमारा मन तथा उसका पूर्वाग्रह भी है और इन पूर्वाग्रहों के कारण ये भ्रम क्लिष्ट और अक्लिष्ट हो सकते हैं।

इस विषय में थोड़ा और विचार करें। हम प्रतिदिन सूर्य को उदित और अस्त होते देखते हैं। सूर्योदय और सूर्यास्त हमारे लिये सत्य दृश्य हैं, याने ये प्रमाण या सत्यज्ञान हैं। किन्तु क्या सचमुच यही बात है? विज्ञान ने सिद्ध कर दिया है कि सूर्य न तो अस्त होता है, न उगता है। पृथ्वी अपनी धुरी पर घूम रही है, इसलिये सूर्य उदित और अस्त होता दिखाई देता है। अर्थात् सूर्योदय और सूर्यास्त विपर्यय या भ्रम मात्र है, यथार्थ नहीं। इस दृष्टि से देखा जाय, तो हमारी जगत की प्रतीति भी भ्रम ही है। विज्ञान कहता है कि यह सारा जगत तो अणु-परमाणुओं तथा उनसे भी छोटे अणुओं से बना है। यही नहीं, ये अणु-परमाणु भी अन्ततोगत्वा ऊर्जा के कण मात्र हैं। वे अत्यधिक गति से घूम रहे हैं, इसलिए हमें स्थूलता का आभास होता है। वस्तुत: स्थूल या (solid) पदार्थ जैसी कोई चीज है ही नहीं।

वेदान्त भी इसकी यथार्थता को स्वीकार करता है तथा जगत सम्बन्धी हमारे अनुभव को समझाने के लिए तीन सत्ताओं की बात कहता है। प्रथम है **पारमार्थिक सत्ता** – यह केवल ब्रह्म की ही सत्ता है। द्वितीय है **व्यावहारिक सत्ता** – सूर्योदय, सूर्यास्त तथा बाह्य जगत की हमारी प्रतीति आदि इसी श्रेणी में आते हैं। बाह्य जगत की इस प्रतीति के द्वारा ही हमारा व्यवहार चलता है। तृतीय है **प्रातिभासिक सत्ता** – जैसे रस्सी में सर्प की प्रतीति। किन्तु अधिक गहराई से विचार करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि वस्तुत: व्यावहारिक सत्ता भी एक प्रकार का भ्रम ही है और वह हमारी इन्द्रियों एवं मन की सीमित क्षमताओं के कारण होता है। यदि हमारी एक दूसरी इन्द्रिय होती, जिससे हम रेडियो तरंगों को पहचान सकते, तो हमें यह सारा जगत दूसरे ही प्रकार का दिखता।

एक अन्य दृष्टान्त लें। कुत्ता, बिल्ली और पक्षियों के भी नेत्र हैं, लेकिन क्या उन्हें जगत वैसा ही दीखता है, जैसा हमें दिखता है? आपको यह मानना ही पड़ेगा कि ऐसा नहीं है। एक तो उनके नेत्रों की बनावट भिन्न होती है, दूसरा उनके मन अन्य प्रकार से सधे होते हैं। बिल्ली चूहा पकड़ने में माहिर होती है और उसकी समस्त इन्द्रियाँ एवं मन इसके लिये सधे होते हैं। एक गिद्ध कई किलोमीटर ऊपर से जमीन पर पड़े एक मांस के टुकड़े को देख सकता है। तात्पर्य यह कि हमारा व्यावहारिक ज्ञान अनेक बातों पर निर्भर करता है और वह व्यावहारिक दृष्टि से सत्य होते हुए भी एक प्रकार का भ्रम या विपर्यय ही है। हमारा प्रस्तुत कार्य, सर्वप्रथम प्रातिभासिक सत्य को पूर्णत: त्यागना, उसके बाद साधना द्वारा चित्तशुद्धि करके व्यावहारिक सत्य से भी ऊपर उठकर पारमार्थिक सत्य तक पहुँचना है। आगे कहते हैं –

शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।।[५]

अर्थात् शब्द के ज्ञान से उत्पन्न, उसके अनुसरण से चित्त में उत्पन्न होनेवाली वह वृत्ति, जिसका वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है, विकल्प कहलाता है।

विकल्प का अर्थ है कल्पना। सम्भवत: कोई व्यक्ति यात्रा पर गया था और वहाँ से आकर हमें उसने जो कुछ देखा, उसका वर्णन किया। उसके शब्दों के आधार पर हमारे मन में एक कल्पना-चित्र उभर आता है। किन्तु सम्भवत: बाद में जब हम उस स्थान के दृश्य का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, तो पाते हैं कि हमारे कल्पना-चित्र और यथार्थ में कोई मेल ही नहीं है।

उपन्यास और कहानियाँ पढ़ने पर हमारा मन स्वाभाविक रूप से उनमें वर्णित घटनाओं और दृश्यों की कल्पना करने लगता है। कुछ साहित्यकार अपनी कहानियों तथा उपन्यासों में दृश्यों, पात्रों, घटनाओं आदि का वर्णन इतने सजीव रूप से, इतने प्रांजल रूप से करते हैं कि उन्हें पढ़ते-पढ़ते हमारे मन में अत्यन्त स्पष्ट कल्पना-चित्र उभर आते हैं, जिनका यथार्थ से कोई सम्बन्ध नहीं होता। वस्तुत: उपन्यास और कहानियाँ तो स्वयं लेखक की कल्पनाएँ ही होती हैं। मन का अवलोकन करने पर हम पायेंगे कि हमारी चित्तवृत्तियों का बहुत बड़ा भाग कल्पनाओं से ही भरा होता है। बच्चे तो कल्पना में ही जीते हैं और मजेदार बात तो यह है कि वे कल्पना और यथार्थ में भेद नहीं कर पाते।

सम्भवत: आपने दो प्रसिद्ध बाल उपन्यासों के बारे में सुना होगा 'Alice in wonder land' तथा 'Through the looking glass'। इनमें एलिस नामक एक बालिका के कल्पना जगत का वर्णन है। वह एक बिल्ली देखती है और उसका मन उस बिल्ली के साथ हो रही घटनाओं के कल्पना जगत में खो जाता है। यही नहीं, वह भी उस कल्पना जगत का अंग बन जाती है। वह आईना देखती है, उसके भीतर उसे अपने तथा बाह्य जगत का प्रतिबिम्ब एक नये जगत जैसा दिखता है। बस, उसकी कल्पना उसे आईने के अन्दर पहुँचा देती है, जहाँ सब कुछ उलटा है और वह उस कल्पना जगत में खो जाती है।

यह तो बच्चों की और उपन्यास-कहानियों की बात हुई। दैनन्दिन जीवन में भी हमारे साथ इस प्रकार की मानसिक क्रियाएँ होती हैं। कोई व्यक्ति कुछ कहता है और हम तत्काल यथार्थ की उपेक्षा कर एक निर्णय पर पहुँच जाते हैं, जो सत्य से भिन्न होता है। विकल्प और स्मृति प्राय: एक साथ उठतीं रहती हैं।

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा।[६]

"अभाव रूप प्रत्यय का आलम्बन करने वाली वृत्ति निद्रा है।"

ऐसी निद्रा जिसमें कोई स्वप्नादि न हों, उसे एक वृत्ति कहा गया है। यह अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि निद्रा की चित्तवृत्तियों के अभाव की स्थिति चित्तवृत्ति निरोध की स्थिति से नितान्त भिन्न है। सुषुप्ति में मन की क्रियाएँ चलती रहती हैं, केवल वे चेतन मन पर उभरती नहीं हैं। चेतन मन पर उनका अभाव रहता है। गहरी निद्रा से उठने पर हम कहते हैं, 'मैं बड़ी सुख की नींद में था, मैं कुछ भी नहीं जानता था।' इस कथन का अर्थ यह है कि निद्रा में सुख और अज्ञान या अभाव का अनुभव पूरे समय बना रहा था। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं कि निद्रा की स्मृति का बना रहना ही इस बात का प्रमाण है कि उस स्थिति में कोई-न-कोई वृत्ति थी। आधुनिक शरीर विज्ञान भी EEG अर्थात् मस्तिष्क की विद्युत तरंगों की सहायता से हमें यह बताता है कि निद्रा में भी मस्तिष्क में एक विशेष प्रकार की विद्युत तरंगें उठती रहती हैं, जो उसके सक्रिय होने का प्रमाण हैं।

निद्रा दो प्रकार की होती है – १. स्वप्नयुक्त निद्रा, जिसे स्वप्नावस्था कहा जाता है। २. स्वप्नरहित निद्रा, जो सुषुप्ति कहलाती है। स्वप्न एक प्रकार के विकल्प ही हैं। अन्तर इतना है कि जाग्रतावस्था में विकल्पों पर हम नियन्त्रण कर सकते हैं, लेकिन स्वप्नावस्था में स्वप्नों को नियन्त्रित नहीं कर सकते। स्वप्नशास्त्र अपने आप में एक बृहत् एवं स्वतन्त्र शास्त्र है, जिसके विस्तार में जाना विषयान्तर होगा।

निद्रा और चित्तवृत्ति-निरोध रूप समाधि में एक महत्त्वपूर्ण अन्तर है। दोनों ही स्थितियों में हमारी आत्मा परमात्मा के साथ एक हो जाती है, लेकिन निद्रावस्था में अज्ञान के बने रहने के कारण हम उसे पहचान नहीं पाते। निद्रा में हमें सबसे अधिक सुख भी इसीलिए प्राप्त होता है कि हम अपने परमानन्द स्वरूप का आस्वादन करते हैं। माण्डूक्य उपनिषद में कहा गया है कि निद्रा में राजा और रंक, गरीब और अमीर, सभी को एक-सा सुख मिलता है। वह सुख है अद्वैत का सुख। समाधि में हमारी चेतना बनी रहती है। बस, इन दोनों में यही अन्तर है। निद्रा अज्ञान है और समाधि है सज्ञान निद्रा। स्वामी तुरीयानन्द जी ने सज्ञान निद्रा की कोशिश की थी।

जब नींद आती भी, तो वे सजग हो जाते थे। धीरे-धीरे

एक ऐसी स्थिति आई कि वे सोते ही नहीं थे। योगियों का कहना है कि निद्रा और जागरण के बीच एक क्षण ऐसा होता है, जब हम पूर्ण जाग्रत भी नहीं होते तथा पूर्ण सोये भी नहीं रहते। वहाँ वृत्तियाँ, संकल्प-विकल्प नहीं रहते। योगियों का कहना है कि उस क्षण को लम्बा करने का प्रयत्न करना चाहिए। यह एक यौगिक साधना है।

अनुभूतविषयासम्प्रमोषः स्मृतिः ।।[७]

– अनुभूत विषय के अनुरूप आकार की वृत्ति स्मृति है। अर्थात् पहले जैसे अनुभव किया गया है, वैसी ही वृत्ति पुन: चित्त में उठना स्मृति है। पूर्व अनुभव किसी भी प्रकार का हो सकता है। वह प्रमाण या विपर्यय, विकल्प अथवा निद्रा, किसी प्रकार का हो सकता है। स्मृति की भी स्मृति होती है। अभाव रूप वृत्ति निद्रा के बाद स्मृति का उल्लेख करने का उद्देश्य यह बताना है कि स्मृति पाँचों प्रकार की वृत्तियों की हो सकती है। असम्प्रमोष का अर्थ है कि स्मृति में पूर्वानुभूत भावों का ही ग्रहण होता है, अननुभूत विषयों का नहीं।

क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियाँ

पाँच प्रकार की वृत्तियों का वर्णन तो हो गया, अब शेष है क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियाँ। क्लिष्ट और अक्लिष्ट (कष्टकर और जो कष्टकर न हो)। अगर आपको बुरा दृश्य दिखा, आपका मित्र बीमार हो गया, यह सत्य वृत्ति आपके मन में उठ रही है, तो सामान्य भाषा में यह कष्टप्रद है। लेकिन सांख्ययोग की दृष्टि से इसका अर्थ है - जो क्लेश से संयुक्त हो। क्लेश पाँच प्रकार के हैं – अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। वेदान्त में अविद्या का अर्थ अज्ञान है। हमारे स्वरूप के सम्बन्ध में, जगत के सम्बन्ध में, जीवन के लक्ष्य के सम्बन्ध में अज्ञानता। अस्मिता - हमारी बुद्धि में जो विचार उठ रहे हैं, वे हमसे भिन्न हैं। बुद्धि के साथ में जब मन संयुक्त हो जाता है और बुद्धि में जो वृत्ति उठती है, उसके साथ संयुक्त होकर कहता है – 'मैं वक्ता हूँ, मैं श्रोता हूँ, मैं मूर्ख हूँ, मैं संन्यासी हूँ ।' यह 'मैं' का बुद्धि के साथ जुड़ना अस्मिता कहलाता है। राग अर्थात् आसक्ति। अन्तिम द्वेष और अभिनिवेश हैं। इन पंच क्लेशों की चर्चा आगे विस्तृत रूप से की जायेगी। ○○○

सन्दर्भ सूत्र – १. पतंजलि योगसूत्र १/५ **२.** वही, १/६ **३.** वही, १/७ **४.** वही, १/८ **५.** वही, १/९ **६.** वही, १/१० **७.** वही, १/११

पृष्ठ ४५२ का शेष भाग

की यात्रा की । वहाँ जाकर पता चला कि स्वामीजी वाधवान गये हैं । अहमदाबाद से कोई गृहस्थ मुझे डाकोर ले गये । वहाँ से बड़ौदा तथा भरूच होते हुए मैं काम्बे की खाड़ी तक गया और नर्मदा-संगम में स्नान किया ।

नर्मदा-संगम पर

नर्मदा-संगम स्थल के एक गाँव में मैं एक किसान गृहस्थ के घर अतिथि हुआ । भोजन आदि के बाद गृहस्थ ने मुझे अपने एक अच्छे कमरे में बैठाया और अपने परिवार के लोगों को साथ लेकर खेत से अनाज लाने चला गया । मकान के सारे कमरे खुले पड़े थे । घर के लोगों को पूरे दिन न लौटते देखकर मैं सोचने लगा कि इन लोगों में कितना विश्वास है कि एक अपरिचित साधु के हाथों में अपना सारा घर-संसार छोड़कर चले गये ।

संध्या के समय उन लोगों के लौटने पर मैंने उस घर की वयस्क गृहिणी से पूछा, ''माँ, मैं एक अपरिचित व्यक्ति हूँ । मुझ अकेले पर इतना विश्वास करके आप लोग कैसे सारे दिन के लिये अपना सारा घर-संसार छोड़ गये?'' वृद्धा ने उत्तर दिया, ''बेटा, थोड़े दिनों पूर्व तुम्हारे ही जैसे एक साधु को घर में छोड़कर हम लोग खेत चले गये थे । बाद में लौटकर आये, तो देखा कि वह साधु नहीं है । बहुत खोज हुई, परन्तु कहीं नहीं मिला । बाद में याद आया कि जिस खाट पर साधु बैठे हुए थे, उसी की गद्दी के नीचे करीब ३० रुपये मूल्य का एक चाँदी का गहना रखा हुआ था । ढूँढ़ने पर पता चला कि साधु के साथ ही वह गहना भी गायब हो चुका है । साधु का वेश देखकर उसे साधु के रूप में ही ग्रहण करना गृहस्थ का धर्म है; उसे गलत सोचना अधर्म होता है । मैंने उस पर विश्वास करके अपने गृहस्थ-धर्म की रक्षा की, परन्तु उस साधु ने साधु का धर्म नहीं निभाया ।'' भले ही मेरा ३० रुपये का गहना चला गया, परन्तु इसके कारण मैं कोई कंगाल नहीं हो गयी ।''

(क्रमशः)

एक महान स्वप्न साकार हुआ

(इण्डियन इन्स्टिटट्यूट ऑफ साइंस, बेंग्लोर की स्थापना में स्वामी विवेकानन्द और उनके शिष्यों का योगदान)
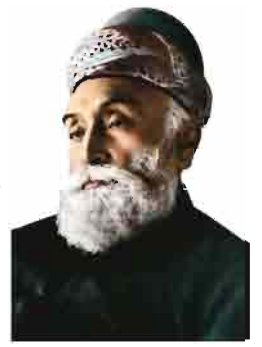
शतदल घोष

('वेदान्त केसरी' रामकृष्ण मठ, चेन्नई के नवम्बर २०१४ में प्रकाशित इस लेख का अनुवाद रायपुर के डॉ. विप्लव दत्ता ने किया है। सं.)

(गतांक से आगे)

इससे सिद्ध होता है कि जमशेदजी के स्वप्न को पूरा करने के लिये स्वामीजी और पादशाह संयुक्त रूप से सक्रिय थे। आश्चर्य की बात है कि इस भेंट के तत्काल बाद ही रामकृष्ण मिशन ने इस योजना के समर्थन में वक्तव्य जारी किया। 'प्रबुद्ध भारत' पत्रिका के अप्रैल १८९९ के संपादकीय में लिखा गया –

"हमें भारत में टाटा के स्नातकोत्तर अनुसन्धान विश्वविद्यालय सम्बन्धी किसी योजना के बारे में ज्ञात नहीं है, जो एक साथ इतना समयोचित और इतनी दूरगामी उपयोगी हो। यह योजना स्वच्छ दृष्टि एवं दृढ़ नियन्त्रण शक्ति के साथ हमारी राष्ट्रीय दुर्बलताओं के मुख्य बिन्दुओं को पूर्णत: समझती है, जिसकी तुलना जनता को प्रदत्त इस उदार उपहार से ही की जा सकती है।

यहाँ टाटा की योजना का विस्तृत वर्णन अनावश्यक है। हमारे पाठकों ने पादशाह की योजना को अवश्य ही पढ़ा होगा। हम यहाँ केवल उसमें निहित सिद्धान्त को बताने का प्रयत्न करेंगे।

यदि भारतवर्ष को जीवित रहना है, समृद्ध होना है और एक ऐसा राष्ट बनना है, जिसका स्थान विश्व के महान राष्ट्रों में हो, तो सबसे पहले उसे भोजन की समस्या का समाधान करना पड़ेगा। आज के इस घोर प्रतियोगिता के परिवेश में इसका समाधान तभी हो सकता है, जब हम आधुनिक विज्ञान के प्रकाश को मानवजाति के दो प्रधान स्त्रोत कृषि एवं वाणिज्य को रोम-रोम में प्रवेश करने दें।

प्राचीन काल की कार्य-प्रणाली आधुनिक मनुष्य द्वारा नित नवनिर्मित आविष्कारों का सामना नहीं कर सकती। जो अपने मस्तिष्क का उपयोग, प्रकृति से कम-से-कम शक्ति का दोहन करके अधिक-से-अधिक पाने का प्रयत्न नहीं करेगा, वह नष्ट हो जायेगा। इससे बच नहीं सकते।

टाटा की योजना भारतीयों के हाथों में उस ज्ञानप्राप्ति के मार्ग को प्रशस्त करती है, जो प्रकृति का संरक्षक, संहारक, आदर्श अच्छा सेवक, वैसे ही आदर्श बुरा स्वामी है। इस ज्ञान को प्राप्त करने के बाद उन्हें प्रकृति पर विजय पाने की शक्ति मिलेगी और इस अस्तित्व के युद्ध में सफल हो सकेंगे।

कुछ लोग इस योजना को असम्भव समझते हैं, क्योंकि इस योजना में बड़ी धनराशि लगभग ७४ लाख रुपये लगेंगे। इस समस्या का सबसे अच्छा समाधान है कि यदि इस देश का सबसे धनी व्यक्ति ३० लाख रुपयों की व्यवस्था कर सकता है, तो फिर पूरा देश मिलकर शेष धन की व्यवस्था क्यों नहीं कर सकता? इस महत्त्वपूर्ण कार्य हेतु अधिक सोचना व्यर्थ है।

हम पुन: कहते हैं कि आधुनिक भारत में सारे देश की भलाई के लिए इससे अच्छी कोई दूसरी योजना नहीं है। आइये, हम सारे देशवासी जाति-सम्प्रदाय को भूलकर इसे सफल बनाने में एक जुट होकर लग जायें।[४]

आगे की ओर कदम

१९०० ई. में अस्थायी समिति ने ब्रिटिश सरकार की इस अनुशंसा को स्वीकार कर लिया कि सर विलियम रैम्से (Sir William Ramsay) को योजना के मूल्यांकन का प्रभार सौंप दिया जाय।[२-३] रेम्से प्रतिवेदन, लार्ड कर्जन के दृष्टिकोण की ही प्रतिध्वनि थी और इसमें अपर्याप्त कोष का उल्लेख भी था। यह भी कहा गया कि इस संस्था के स्नातकों की भावी जीविका की सम्भावना भी आशानुरूप नहीं है। इसके अतिरिक्त इस रिपोर्ट से दार्शनिक और शैक्षिक विभाग के प्रस्ताव को काट दिया गया, इस प्रकार इम्पिरियल-यूनिवर्सिटी ऑफ इंडिया को सांइटिफिक रिसर्च इंस्टिट्यूट तक ही सीमित कर दिया गया।

यह प्रस्ताव जमशेदजी और पादशाह को ठीक नहीं लगा। इतनी सारी अनिश्चितताएँ तथा ब्रिटिश सरकार के जानबूझ कर किये गये असहयोग, धनाभाव आदि के कारण जमशेदजी इस योजना को लगभग बंद करने की सोचने लगे। बौद्धिक वर्ग में एक निराशा-सी छा गयी, ६ अप्रैल,

भगिनी निवेदिता

१९०१ में 'बंगाली' पत्रिका ने एक संवेदनशील अपील किया – वे इन आशाओं के प्रेरक हैं। अब वे वापस पीछे नहीं हट सकते। उनकी देशवासियों के प्रति निष्ठा और कल्याण की भावना उन्हें पीछे नहीं हटने देगी। [४]

भगिनी निवेदिता को यह स्पष्ट रूप से मालूम था कि स्वामी विवेकानन्द जमशेदजी की इस महत्त्वाकांक्षी योजना का सम्पूर्ण हृदय से समर्थन करते थे, यह योजना स्वामी विवेकानन्द के भारतवर्ष में विज्ञान एवं औद्योगिकी के विकास के अनुरूप थी। स्वामीजी की दूसरी शिष्या श्रीमती ओली बुल की सहायता से निवेदिता ने इग्लैंड में एक सम्मेलन किया, जहाँ ब्रिटिश सरकार के शिक्षा विभाग के एक महत्त्वपूर्ण उच्च पदाधिकारी सर जार्ज बर्डवुड भी आमन्त्रित थे। बर्डवुड ने स्पष्ट शब्दों में कहा –

हम भारतवर्ष पर शासन मुख्यत: अपने लाभ के लिए करते हैं । हमारा सौहार्दपूर्ण प्रयास कमोबेश भारतवर्ष की सम्पत्ति और खुशी से जुड़ा है, पर उतना नहीं, जितना कोई पाखण्डी विश्व को विश्वास करने कहे कि हम शासित जनता की भलाई के लिये ही करते हैं। [८]

जब जमशेदजी के प्रस्तावित विश्वविद्यालय का विषय ज्वलन्त चर्चा का विषय बन गया, तब उन्होंने यह सुझाव दिया –

पी.जी.यू. (स्नातकोत्तर विश्वविद्यालय) को विज्ञान के हित के लिए ही कार्य करना चाहिए और यह विश्व की समस्या है, मात्र भारतवर्ष की समस्या नहीं है। जैसाकि मैं टाटा से सदा कहता रहता हूँ कि अन्य सभी चीजों को छोड़कर नि:संकोच इसे सरकारी अधिकारियों के हाथों में सौंपकर सम्पूर्ण विश्व के लिये खोल देना चाहिए। [८]

अपने सुझाव के समर्थन में बर्डवुड ने तर्क दिया कि भारत में स्थापित विश्वविद्यालयों – कलकत्ता मद्रास और मुम्बई समस्या से जूझ रहे हैं। निवेदिता ने तत्काल उत्तर दिया कि ये सभी विश्वविद्यालय पूर्णत: शासन के नियन्त्रण में ही हैं।[८] हार न मानते हुए बर्डवुड ने कहा कि जहाँ उन्हें याद है कि गत पचास वर्षों में साहित्य, विज्ञान या दर्शन के किसी भी क्षेत्र में भारतीय अपनी श्रेष्ठता का प्रदर्शन नहीं कर सके। निवेदिता ने तुरन्त जवाब दिया,"इतिहास में प्रथम बार रॉयल सोसायटी ने अपना सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रारम्भ से क्रिसमस की छुट्टी तक के लिये रसायनशास्त्र के एक हिन्दु प्रोफेसर (जे.सी.बोस) को नियुक्त करने का प्रस्ताव दिया है।" [८]

बर्डवुड ने अन्य कोई तर्क नहीं सुना और उन्होंने जमशेदजी को अन्तिम रूखा परामर्श दिया –

"टाटाजी, सबसे विचार-विमर्श करना बन्द कीजिये और अपना पूरा अधिकार और ३० लाख रुपये तत्काल रैमसे के हाथों में सौप दीजिये। [८]

बाधाओं का अतिक्रमण

जो भी हो, अदम्य निवेदिता कई पत्रिकाओं एवं समाचार पत्रों में लिखने लगीं। अंग्रेजी शासकों का मुखपत्र 'पायोनीयर' की छलपूर्वक खबर कि टाटा की उदारता का मुख्य उद्देश्य शासन की सहायता से एक पारिवारिक ट्रस्ट बनवाना है, निवेदिता ने इसका उत्तर कठोर शब्दों में दिया था, जो स्टैटसमैन में जनवरी, १९०१ में प्रकाशित हुआ था। [८]

उन्होंने विश्व के प्रसिद्ध बुद्धिजीवियों – दार्शनिक विलियम जेम्स, धर्मगुरु रेवरेन्ड एच. आर. हावेस, जीवविज्ञानी, शिक्षाविद्, समाजविज्ञानी, भूगोलवेत्ता, समाजसेवी तथा नगर नियोजक पैट्रिक गेडेस को भावोत्तेजक पत्र लिखा। उनका निवेदन इस विश्वविद्यालय की भारतीयता को अक्षुण्ण रखने के लिये था। [८]

विलियम जेम्स ने उत्तर दिया, "टाटाजी की भारत में उच्च शिक्षा की उन्नति की योजना के विषय में मेरा विचार है कि वे अपने उद्देश्य की सफलता हेतु सर्वश्रेष्ठ सुशिक्षित लोगों से मार्गदर्शन लें। ... संस्था के सभी स्थायी प्रशासनिक समिति में चारों समुदाय – पारसी, मुसलमान, हिन्दू तथा यूरोपी सबका समान प्रतिनिधित्व हो, कोई किसी से अधिक या कम न हो। प्रबन्ध-संचालन राष्ट्रीय भावनाओं को ध्यान में रखते हुए हो। स्थानीय छात्रों को सभी प्रकार की सुविधाएँ मिले एवं उन्हें प्रोत्साहित किया जाय, ताकि वे विज्ञान के अध्ययन में स्वयं को प्रतिष्ठित कर सकें एवं संस्था में उच्च पदों को प्राप्त कर सकें।" [८]

सर गेडेस ने निवेदिता के प्रत्युत्तर में पाँच पत्र लिखे, जो बाद में एकत्र कर निम्नांकित शीर्षक से प्रकाशित हुआ – यूरोप एवं भारतवर्ष के विश्वविद्यालय और भौगोलिक

सामाजिक अनुसन्धानात्मक अध्ययनशाला की आवश्यकता।

इन पत्रों का यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि यूरोप और भारत की सर्वश्रेष्ठ चीजों को मिलाकर इस अनुसंधान संस्थान की स्थापना की जाय, ताकि यह विशिष्ट और रुचिकर हो। उन्होंने यह भी आशा जताई कि ऐसा करने से यह संस्थान पश्चिमी विचारों से आधी पीढ़ी के लोगों को प्रेरित करेगा।

जमशेदजी की स्वप्निल योजना की सफलता को देश-विदेश में उच्च शिक्षा के क्षेत्र में उत्तेजना के शिखर पर पहुँचने पर जमशेदजी ने स्वामी विवेकानन्द को कु. जे. मैकलाउड के द्वारा बॉम्बे आने को आमन्त्रित किया। दुर्भाग्य से स्वामीजी तब अस्वस्थ थे। उन्होंने प्रत्युत्तर में १७ फरवरी, १९०१ को लिखा –

"मुझे जानकर यह प्रसन्नता हुई कि आप टाटा से मिले और वे सबल और स्वस्थ थे। यदि मैं मुम्बई की यात्रा के लायक स्वस्थ रहा, तो अवश्य ही उनका आमन्त्रण स्वीकार करूँगा।[४]

यद्यपि स्वामीजी मुम्बई नहीं जा सके, किन्तु उनके निर्देशानुसार प्रबुद्ध भारत के मार्च, १९०१ के सम्पादकीय में यह प्रस्तावित किया गया –

"यह एक बहुत आनन्ददायक व्यवस्था होगी यदि टाटा अनुसंधान विश्वविद्यालय योजना को अन्य स्मारक योजनाओं से युक्त कर दिया जावे। क्योंकि पारसी देशभक्त का यह राजोचित उपहार सम्राज्ञी के स्मारक योजनाओं से युक्त होने के योग्य है।" [४,६]

देश और विदेश से प्रभाव पड़ने के कारण अन्त में अनिच्छा होते हुए भी ब्रिटिश शासन को सहमत होना पड़ा।

विश्वविद्यालय योजना का एक नया प्रस्ताव मैलबोर्न विश्वविद्यालय के प्रोफेसर ऑरमे मैसन और रुड़की महाविद्यालय के कर्नल क्लिबोर्न द्वारा प्रस्तुत किया गया। उन्होंने 'साइंटिफिक रिसर्च इंस्टीट्यूट' के स्थान पर 'इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ सांइस' नाम प्रस्तावित किया तथा केमिस्ट्री, एक्सपेरिमेन्टल फिजिक्स एवं एक्सपेरिमेन्टल बॉयोलॉजी विषयों पर बल दिया।[२,३] मार्च, १९०२ में कई समाचार पत्रों, पत्रिकाओं तथा प्रबुद्ध भारत में भी यह समाचार प्रकाशित हुआ।

परवर्ती काल में १९०४ में संस्थान की आर्थिक व्यवस्था को जमशेदजी के परिवार से अलग करने का निर्णय लिया गया।[२,३] अंग्रेज सरकार की बाधायें १९०५ तक दूर हो गयीं और मैसूर के महाराजा (स्वामी विवेकानन्द के एक भक्त) ने १९०७ में भूखण्ड स्वीकृत किया था, जिसके सौंपने का औपचारिक आदेश १९०९ को पूर्ण हुआ।[२,३,७]

स्वामी विवेकानन्द ४ जुलाई, १९०२ को महासमाधि में लीन हो गये और जमशेदजी टाटा मई, १९०४ को स्वर्गवासी हो गये। [२,३,४,]

जमशेदजी के स्वर्गवासी होने के बाद 'प्रबुद्ध भारत' ने एक निधन-सूचना प्रकाशित की, जो उनके प्रति स्वामी विवेकानन्द की भावनाओं की ही प्रतिध्वनि थी – "भारतवर्ष के सच्चे महान देशभक्त, सपूत और देश के उद्योग-जगत के प्रथम महान नायक मुम्बई के श्री जे.एन. टाटा के निधन से देश की अपूरणीय क्षति हुई है। हम सभी उनके द्वारा प्रदत्त स्नातकोत्तर अनुसन्धान संस्थान के महान दान से अवगत हैं। एक समृद्ध भारत के निर्माण के लिये टाटाजी जैसे मस्तिष्क एवं गुणों की आवश्यकता है। यदि कुछ और टाटा हों, तो भारतवर्ष के स्वरूप को बदल देंगे। हमारे धनाढ्य देशवासी इन पारसी देशभक्त के परोपकार और उदारता का अपने जीवन

इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइन्स, बेंगलोर

में पालन करें ।"[४]

उपसंहार

सच्चे भारतीय विज्ञान संस्थान की कल्पना करनेवाले दोनों महान स्वप्नद्रष्टाओं में से कोई भी अपने स्वप्न को साकार होते नहीं देख सका।

एक ऐतिहासिक यात्रा जिसमें एक युवा संन्यासी ने एक महान उद्योगपति को प्रभावित किया, जिसके दूरगामी परिणाम हुए। परवर्ती काल में स्वामीजी तथा उनके अनुयाइयों के निःस्वार्थ संघर्ष ने जमशेदजी को उनके स्वप्न को पूर्ण करने में सहायता की। पराधीन भारत के इतिहास में यह आशा का प्रकाशस्तम्भ बनकर खड़ा है।

हम उनकी पवित्र स्मृति में नतमस्तक हैं। ○○○

सन्दर्भ सूत्र –

1. S. Ranganathan, *Many Ramayanas : In Pursuit of the History of the Foundation of IISc and NIAS, IISc and NIAS Discussion meetting,* November 12, 2008.

2. B.V. Subbarayappa, *In pursuit of Excellence : A History of the Indian Institute of Science,* Tata McGraw-Hill, 1992.

3.T.A. Abinandanan, *The fate of humanities and social sciences at IISc,* February 11, 2008. (http:/ / nanopolitan.blogspot.in/2008/02/fate-of-humanities-and-social-sciences.html)

4.Sankari Prasad Basu, *Vivekananda, Nivedia, and Tata's Research Scheme - I', Prabuddha Bharata,* Advaita Ashrama, Mayavati, Himalayas, pp.413-420, October 1978.

5. Talk by APJ Abdul Kalam. (http://apc.iisc.ernet.in/iisc_tata_vivek_kalam.htm)

6. B.M.N. Murthy, The Indian Institute of Science, Bangalore. The Role of Swami Vivekandnda in its founding' April 3, 2011. (http:/ /murtymandala. blogspot. in/2011/04 indian-institute-of-science-and -swami.html)

7. P. Balaram, 'The Birth of the Indian institute of Science', *Current Science,* Editorial, Vol. 94, No.1, January 10, 2008.

8. S.P. Basu, 'Vivekananda, Nivedita, and Tata's Research Scheme - II', *Prabuddha Bharata,* Advaita Ashrama, Mayavati, Himalayas, pp. 449-458, November 1978.

9. Ramachandra Guha, *'An Indian Institute',* The Hindu, April 12, 2009.

10. Ramachandra Guha, 'A Gift to Itself', *The Hindu,* April 26, 2009.

जय दुर्गा जय शक्ति महान

पं. गिरिमोहन गुरु, होशंगाबाद

यद्यपि है अधीश्वरी जग की, किन्तु भक्तिवश अनगिन रूप,
समय-समय पर प्रकटित माँ के नवदुर्गा विख्यात् अनूप ।
है यह बात प्रसिद्ध पुराण, जय दुर्गा जय शक्ति महान
पुत्री बनी 'शैल पुत्री' मो, पाया हिमगिरि पितु सम्मान,
ब्रह्मचर्य ही शील रहा, जिसका वह ब्रह्मचारिणी जान ।
नाम 'चन्द्रघण्टा' दुतिमान, जय दुर्गा ...
जिसके उदर मध्य स्थित है, त्रय तापी नश्वर संसार,
वही 'कुष्माण्डा' कहलाती, जिसका जग में जय-जयकार ।
'स्कन्दमाता' षष्ठम् मान, जय दुर्गा जय ...
कात्यायन ऋषि के आश्रम पर, प्रगट हुई ले कन्या रूप,
'कात्यायनी' वही कहलाई, कहा वेद ने शक्ति अनूप ।।
'कालरात्रि' सप्तम अभिधान, जय दुर्गा जय ...
गौर वर्णवाली माँ जननी नाम 'महागौरी' प्रसिद्ध,
नवम् 'सिद्धिदात्री' नवदुर्गा, कार्य करो जन के सब सिद्ध ।
गिरिमोहन गुरु गाता गान, जय दुर्गा जय ...
कौमारी, बाराही, ऐन्द्री, नारसिंही, वैष्णवी सुजान,
महेश्वरी शक्ति ब्राह्मी शिवदूती चामुण्डा का गान ।
देता सदा अभय वरदान, जय दुर्गा जय ...
काली तारा छिन्ना मस्ता बगला धूमावती स्वरूप,
कमला ललिता त्रिपुरा भैरवी मातंगी भुवनेश्वरी रूप ।
करें सदा जन का कल्याण, जय दुर्गा जय ...

माँ तुम मेरी संजीवनी

माँ तुम मेरी संजीवनी, तू ही मेरा जीवन धन ।
तेरे सहारे चलता हूँ मैं, प्राण मेरी तू मेरा मन ।।
तू ही माँ ! दृष्टि मेरी, तू ही सृष्टि अग-जग की ।
चिरसंगिनी मेरी तुम, ज्योति अँधियारे मग की ।।
तू मेरा स्मित हास, तू ही रास गोकुल की ।
नीति मेरी नियमधात्री, प्रीति प्राण आकुल की ।।
माटी जयरामबाटी की तुम, आराध्या सदाशिव की ।
सिद्धों की तुम सिद्धा जननी! चिरसुहागिनि निज पिय की ।।
राजलक्ष्मी जगद्धात्री, शक्तिरूपा सहोदरा माँ ।
परा विद्या तू हमारी, किन्तु अपरा भी तुम्हीं माँ ।।
शरणागत मैं सर्वहारा, भ्रमितचित्त पर पुत्र तेरा ।
हूँ तो वश में इस जगत के पकड़ लो माँ हाथ मेरा ।।

ईशावास्योपनिषद (१०)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

अब आठवें मंत्र में कह सकते हैं कि उसी आत्मतत्त्वविद् की स्थिति का वर्णन किया गया है –

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूर्याथातथ्यतोऽर्थान्
व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ।।८।।

यहाँ पर भिन्न-भिन्न प्रकार के विशेषण लगाये गये हैं। माने जिसने आत्मतत्त्व को जान लिया, आत्मज्ञानी बन गया, वह इस प्रकार के गुणवाला हो जाता है। ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति – ब्रह्म को जानने वाला ब्रह्म ही बन जाता है। यह जो श्रुतिवाक्य है, उसी श्रुतिवाक्य के अर्थ को ध्वनित करने वाला यह मंत्र है – स पर्यगात् इति।

कल हमने ज्ञानी और विज्ञानी का अर्थ-भेद स्पष्ट किया था। शंकराचार्यजी कहते हैं – स्वानुभव संयुक्त, जो ज्ञान है, वह विज्ञान है। हम गुरु के मुख से सुनते हैं, वह ज्ञान है। शास्त्रों में पढ़कर जो ज्ञान हम प्राप्त करते हैं, वह ज्ञान है। किन्तु जब हम अपनी अनुभूति से उसे संयुक्त कर देते हैं, तो वही विज्ञान बन जाता है, विशेष ज्ञान हो जाता है। यहाँ पर जो विज्ञानी हो गया, उस विज्ञानी के स्वरूप का वर्णन इस आठवें मन्त्र में है। वह कैसा हो जाता है? स माने वह, पर्यगात् – परि माने सब ओर गया हुआ, माने सर्वव्यापी होना। जो आत्मविज्ञानी है, वह मानो सर्वव्यापी बन जाता है।

श्रीरामकृष्ण देव के जीवन की घटनाओं को देखने से यह बात बहुत अच्छी तरह से समझ में आ जाती है। जो विशेषण यहाँ पर लगाये गये हैं, श्रीरामकृष्ण देव के जीवन के आलोक में इन विशेषणों को समझने में सुविधा होती है। हम उनके जीवन में पढ़ते हैं । एकबार वे अपने कमरे से बाहर गंगा की ओर जो अर्धगोलाकार बरामदा है, उस ओर निकले। वे एकटक गंगा की ओर देख रहे थे। तभी उन्होंने देखा कि दो माँझियों में लड़ाई हो रही है। एक माँझी ने दूसरे की पीठ पर जोरों से तमाचा मारा और श्रीरामकृष्ण कराह उठे। उन्हें ऐसा लगा कि तमाचा उनकी पीठ पर पड़ा है। वे भाव में थे। उनका कराहना सुनकर उनका भाँजा हृदयराम, जो उनकी सेवा करता था, दौड़ा हुआ आया और पूछा – क्या हुआ मामा आपको? आप क्यों इस प्रकार से कराह उठे? श्रीरामकृष्ण तो भावावस्था में थे। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। अचानक हृदयराम की दृष्टि मामा की पीठ पर पड़ी और वहाँ पर ऊँगलियों के निशान जैसे कुछ दिखा, मानो किसी ने श्रीरामकृष्ण को ही तमाचा मार दिया हो। आग-बबूला हो गया हृदयराम। उसने कहा – मामा ! आप उस दुष्ट का नाम बता दीजिये, जिसने यह अपराध किया है। आज उसका सिर धड़ से अलग होकर ही रहेगा। मामा फिर भी कुछ बोल नहीं पा रहे हैं। जब भावावस्था से उनका मन नीचे आया, तो उन्होंने कहा कि नहीं रे बुद्धू ! किसी ने मुझे मारा नहीं है ! दो माँझियों में लड़ाई हो रही थी। एक ने दूसरे को पीटा, मुझे ऐसा लगा कि वह मार मुझे ही लगी।

यह बड़ी विलक्षण बात है ! यदि स्वामी विवेकानन्द जैसे तार्किक लोग न होते, श्रीरामकृष्ण यदि सत्यवादी न होते, यदि इसका प्रमाण न मिलता, तो श्रीरामकृष्ण के जीवन में सत्य के प्रति जो आकर्षण था, सत्य के प्रति जो निष्ठा थी, उसे हम जान नहीं पाते और हम इस घटना को भी कहते कि शायद कपोल-कल्पित है। क्या कोई मनुष्य यहाँ तक व्यापक बन सकता है? किन्तु आत्मविज्ञानी इतना सर्वव्यापी बन सकता है, यह श्रीरामकृष्ण के जीवन से प्रमाणित होता है।

एक दिन की घटना है। सुन्दर लॉन पर कोई व्यक्ति बूट पहने हुए टहल रहा था। श्रीरामकृष्ण का मन वैसे ही व्यापक हो गया । उनकी छाती लाल हो गयी। उन्हें ऐसा लगने लगा कि कोई उन्हीं की छाती को रौंदते हुए चल रहा है। इतने वे तादात्म्य हो जाते थे। उनकी तादात्म्यता आब्रह्मस्तम्भपर्यन्त थी, ऐसा कहा गया। स्तम्भ माने घास और आब्रह्म अर्थात् ब्रह्मातत्त्व। तृण से लेकर के ब्रह्मा तक जिसको ब्रह्म बोध होता हो, वही अवस्था श्रीरामकृष्ण की हो गयी थी।

इस मन्त्र में कहा गया – स पर्यगात् शुक्रम् अर्थात् वह चैतन्य स्वरूप होता है। अकायम् – वह अशरीरी होता है। अशरीरी का क्या अर्थ है? उसका यह जो लिंग शरीर है, उससे वह परे है। अकायम् से लिंग शरीर, सूक्ष्म शरीर का निषेध किया गया। उस आत्मा को अव्रणम्, अस्नाविरम् कहा गया। व्रण किसमें होता है? व्रण भौतिक शरीर में, स्थूल शरीर में होता है। स्नाविरम् माने शिरायें। शिरायें किसमें होती हैं? शिरायें स्थूल शरीर में होती हैं। वह आत्मतत्त्व अक्षत है, उसमें शिरायें नहीं हैं। यहाँ अव्रणम्, अस्नाविरम् कहकर स्थूल शरीर का निषेध किया। वह आत्मा स्थूल शरीर से ऊपर है। शुद्धम्, वह निर्मल है। शुद्धम् कहकर कारण शरीर का निषेध किया गया। कारण शरीर मूल शरीर कहलाता है। तीन शरीर हैं – स्थूल शरीर, उसके भीतर में सूक्ष्म शरीर और कारण शरीर। उन तीनों शरीरों का निषेध किया गया। यानि वह आत्मा तीनों शरीरों से परे है। माने उसने तीनों शरीरों का छेदन कर लिया या पंचकोशों का भेदन कर लिया। यह वेदान्त की भाषा है। हम वेदान्त में पंचकोश भेदन सुनते हैं। उसको त्रिशरीर छेदन भी कहा जाता है। पंचकोश identically equal to तीन शरीर। अन्नमय कोश identically equal to स्थूल शरीर। सूक्ष्म शरीर के अन्तर्गत तीन कोश आते हैं – प्राणमय कोश, मनोमय कोश और विज्ञानमय कोश। कारण शरीर के अन्तर्गत आनन्दयम कोष आता है। चाहे आप पंचकोश-भेदन कहिए, चाहे त्रिशरीर-छेदन कहिए, यह वेदान्त की भाषा है। जो आत्मविद् हो गया है, आत्मविज्ञानी हो गया है, वह इन तीनों शरीरों को पार करके शरीर-बोध से ऊपर स्थित रहता है। अपापविद्धम्, पापविद्धम कौन होता है? जिसमें द्वैत की भावना होती है। जहाँ पर भी द्वैत है, वहाँ पर पाप है। शंकराचार्य तो बड़े कठोर और कट्टर अद्वैतवादी वेदान्ती थे। वे कहते हैं कि द्वैतबुद्धि ही पापबुद्धि है। जो विज्ञानी हो गया है, वह इस पाप से भी परे चला जाता है। उसको पाप छू नहीं पाता, क्योंकि उसने द्वैतभाव को त्याग दिया है। वह द्वैतभाव से परे चला गया है। कविर्मनीषी, वह कवि हो जाता है। कवि क्रान्तद्रष्टा को कहते हैं। कवि माने जिसने अतीत को देख लिया है। जो अतीत को देख सकता है, वर्तमान को देख ही रहा है, इसलिए वह भविष्य को भी देखने में समर्थ होता है। यदि मैं अपने अतीत को भी देखने में समर्थ हो जाऊँ, वर्तमान मेरे सामने है ही, तो मैं अपने भविष्य को भी देखने में समर्थ हो सकता हूँ। इसलिए तीनों कालों के द्रष्टा को क्रान्तद्रष्टा कहते हैं। मानों वह त्रिकालज्ञ हो जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से यह कवि शब्द का अर्थ है। वह आत्मविज्ञानी कवि हो गया, मानों त्रिकालदर्शी हो गया। मनीषी का अर्थ है, जो मन पर शासन करने में समर्थ है। मनस: इष्टे मनीषी – जो मन पर शासन कर सकता है, वह मनीषी है, वह अपने मन का राजा होता है। परिभू: – वह सब ओर व्याप्त है। स्वयंभू: – स्वतन्त्र। वह आत्मा व्यापक है, सबके भीतर में स्थित है, परन्तु स्वतन्त्र है। यह जो ज्ञानी है, विज्ञानी है, वह अपने को सबके भीतर में व्याप्त अनुभव करता है, पर किसी के दोष से अपने को दूषित अनुभव नहीं करता है । उसके अतिरिक्त वह कैसा है? याथातथ्यतो अर्थान् इति। यह जो ब्रह्मतत्त्व है, आत्मतत्त्व है, उसने सम्वत्सरों को, वर्षों को अपना-अपना काम नियत करके चिरकाल के लिए बाँट दिया है। ब्रह्मतत्त्व के कारण ही ये सब संचालित होते रहते हैं। जैसे हमने पहले दिन कहा था – भयात् तस्य अग्निस्तपति भयात् तपति सूर्य: – उस ब्रह्मतत्त्व के कारण ही अग्नि और सूर्य तपते हैं।

ब्रह्मज्ञानी पुरुष इतना शक्तिशाली हो जाता है कि वह ये सब करने में भी समर्थ हो जाता है, उसमें ये सारी शक्तियाँ आ जाती हैं। कहा जाता है कि ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति – जो ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म के ही समान हो जाता है या ब्रह्म ही बन जाता है। जो ब्रह्मविद् है, ब्रह्मज्ञानी है, वह ब्रह्म ही हो जाता है, तो इसका क्या अर्थ हुआ? अर्थात् ब्रह्म की सारी शक्ति उसमें आ जाती है, ब्रह्म की जितनी शक्ति है, वह उस ब्रह्मज्ञ पुरुष को प्राप्त हो जाती है। अब एक प्रश्न उठता है कि क्या वह इस संसार की सृष्टि करने में, उसका लय करने में और उसका पालन करने में समर्थ हो सकता है? ऐसे कुछ प्रश्न वेदान्त के क्षेत्र में उठाये गये हैं और इन प्रश्नों पर बड़ी मीमांसा की गयी है, बड़ी चर्चा की गयी है। उस प्रश्न में हम नहीं जाना चाहते, वह एक अवान्तर प्रश्न होगा । इससे सम्बन्धित नहीं है, वह समय सापेक्ष है। किन्तु वहाँ इतना ही संकेत के रूप में कहा गया है कि यदि ब्रह्मज्ञ के भीतर इस प्रकार की इच्छा उठे, तो वह करने में समर्थ है, पर वैसी इच्छा उसमें इसलिए नहीं उठती कि उसने अपनी इच्छा नामक कोई चीज नहीं रखी है, उसने उस ब्रह्म की इच्छा में, उस ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा को सर्वतोभावेन समर्पित कर दिया है, इसलिए उस ब्रह्मज्ञ की स्वतन्त्र इच्छा का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। इस प्रकार का उत्तर दिया गया है। **(क्रमश:)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३४)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत-से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

– महाराज ! व्याकुलता समझाने के लिए ठाकुर ने शिष्य को जल में डुबाकर रखने की कहानी सुनाई थी। वहाँ गुरु ने शिष्य से पूछा – "जल के भीतर तुम्हें कैसा लग रहा था?" शिष्य ने कहा – "मैं साँस लेने के लिये तड़प रहा था।" महाराज ! तो क्या व्याकुलता माने ऐसा ही कष्ट होता है? क्या भगवान की प्राप्ति के लिये हम सबको ऐसा ही कष्ट सहना होगा?

महाराज – व्याकुलता का अर्थ ही है तीव्र वेदना। व्याकुलता आनन्ददायक नहीं है। जो शरीर हमें इतना प्रिय है, जिसके लिए संसार है, जो इतना आकर्षक है, उसे तुच्छ करना, देह-बोध भग्न करना, क्या कम कष्टदायक है !

– महाराज ! जगत को हीन भाव से देख रहा हूँ, संसार की उपेक्षा कर रहा हूँ, इसलिये कष्ट हो रहा है या जगत की उपेक्षा नहीं कर पा रहा हूँ, इसलिये कष्ट हो रहा है?

महाराज – जगत की उपेक्षा कर नहीं पा रहा हूँ, ईश्वर-दर्शन नहीं कर पा रहा हूँ, यह जो अभावबोध है, इसी से कष्ट हो रहा है। देखो न, ठाकुर जो इतने आनन्दमय हैं, उन्होंने भी दिखाया है कि भगवान के लिये कितनी व्याकुलता चाहिए। वे भी अत्यधिक वेदना का अनुभव कर रहे हैं। वे धरती में गिरकर मुहँ रगड़कर क्रन्दन कर रहे हैं।

– हाँ महाराज ! जब हम लोग ठाकुर को आनन्दमय देख रहे हैं, तो वह उनकी साधनावस्था नहीं है। साधनावस्था में उन्होंने तीव्र वेदना का अनुभव किया है। व्याकुल होकर आर्तनाद किया है। वे तनिक भी प्रसन्न नहीं रहे। अत्यन्त गम्भीर थे।

महाराज – सही कह रहे हो, वे ठीक वैसे ही थे। (थोड़ा रुककर) ऐसा मत सोचो कि दो पृष्ठ वेदान्तसार पढ़ने से ज्ञान हो जायेगा। ऐसा मत सोचो कि गृहस्थ-जीवन छोड़कर आये हो, तो बहुत बड़ा काम कर दिये हो। यह कुछ भी नहीं है। अच्छा खाने-पहनने की इच्छा स्थूल भोग है। इसके अतिरिक्त कितनी सूक्ष्म वासनायें हैं। जैसे, किसी ने मेरा सम्मान नहीं किया, अर्थात् मान-सम्मान की वासना भी भोग-वासना है। यदि कोई प्रशंसा करता है, तो प्रसन्नता होती है। क्यों होती है? क्योंकि भोग-वासना भीतर में है। क्या संसार के प्रति वैराग्य हो रहा है? यह संसार अत्यन्त तुच्छ है, क्या इसका बोध हो रहा है? ऐसा तो नहीं हो रहा है। बल्कि भोजन की पंक्ति में बड़ा-बड़ा रसगुल्ला मिलने पर कभी भी संसार तुच्छ बोध नहीं होता, त्याज्य बोध नहीं होता। (थोड़ी देर मौन रहकर पुन: कहते हैं।) जानते हो, ऐसी तीव्र व्याकुलता कई लोगों को जीवन-भर नहीं आती है। इससे मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि हमलोगों में किसी की आन्तरिकता नहीं है। निष्ठा है, किन्तु व्याकुलता नहीं है। व्याकुलता नहीं होने से ईश्वर-दर्शन नहीं होगा। वैराग्य नहीं होने से न-हीं-होगा। यह निश्चित है। तब हमलोगों के लिये क्या उपाय है? हमलोगों में वैसी तीव्र व्याकुलता नहीं है, तो क्या बैठे रहेंगे? बड़ा व्यावसाय करने के लायक अपने पास पूँजी नहीं है, तो क्या बैठे रहेंगे? अपने पास जितनी पूँजी है, उसी से आरम्भ करना होगा। धीरे-धीरे नियम-निष्ठा के साथ उनकी (भगवान की) ओर अग्रसर होने का प्रयास करना होगा। उससे तीव्रता आयेगी, व्याकुलता आयेगी। इसके अतिरिक्त दूसरा क्या उपाय है? कई लोग उनकी (भगवान की) कृपा की बात कहते हैं। मैं कहता हूँ,

कृपा करना तो उनका कार्य है। वे कृपा करेगें या नहीं, यह उनके ऊपर निर्भर है। मैं क्या कर रहा हूँ? क्या मैं अपने लिये कुछ नहीं करूँगा? वे नहीं कर रहे हैं, इसका तो हम हिसाब ले रहे हैं, किन्तु हम क्या कर रहे हैं, क्या हमने इसका हिसाब किया है? मुझे कई लोग कहते हैं कि ठाकुर के कराने या आपके (गुरुदेव के) कराने से करूँगा। मानो उनका अपना कर्तापन ही बिलकुल चला गया है !

– महाराज, जप-ध्यान में आन्तरिकता कैसे आती है?

महाराज – आन्तरिक होने से आन्तरिकता आती है। हम साधु लोग जिस प्रकार जप-ध्यान करने का प्रयास कर रहे हैं, आन्तरिकता रहित होकर कर रहे हैं, ऐसा नहीं है। हमारा प्रयास आन्तरिकतारहित तब होता, जब किसी प्रयोजन या योजना पूर्ति हेतु जप-ध्यान करते – जैसे, कुछ प्राप्ति या यशप्राप्ति की इच्छा, बड़ा साधु होकर सम्मान-यश की आकांक्षा या प्रतिष्ठा इत्यादि की प्राप्ति। किन्तु साधुओं का जप-ध्यान आन्तरिक नहीं हो रहा है, ऐसा नहीं कहा जा सकता। (एक-दो लोग ऐसे हो सकते हैं, उनकी बात मैं नहीं करता।) किन्तु वह गति धीमी है, मन्द है। यह प्रमाद है, मन्द गति के कारण ऐसा हो रहा है? सजगता नहीं रहती है। जप-ध्यान में मन को एकाग्र नहीं कर पा रहे हैं। अधिकांशत: मन जड़ग्रस्त रहता है, सो जाता है। यह समस्या अधिकांश लोगों की है। ऐसा क्यों होता है? क्योंकि व्याकुलता का अभाव है, इच्छा का अभाव है। किसी अभाव का बोध, व्याकुलता का बोध कहाँ हो रहा है? व्याकुलता के आने से क्या नींद आती है? क्या सोया जा सकता है? जैसा कि ठाकुर कह रहे हैं – यदि चोर को जानकारी हो जाये कि समीप के कक्ष में सोना छिपाकर रखा गया है, तो क्या वह शान्ति से सो सकता है? या कि वह प्रयास करेगा कि कैसे दिवाल काटकर इस सोने को प्राप्त किया जा सके। अब बात यह है कि हमलोगों में वैसी व्याकुलता नहीं है, तो क्या बैठे रहेंगे? या प्रयत्न करेंगे? जो मूलधन नहीं है, उसके लिए चिन्ता करने, हाय हाय करने से क्या लाभ है? हमारे पास जितना मूलधन है, हम उतना ही लेकर प्रयत्न करते जायेंगे। यही उपाय है। प्रयास करते-करते व्याकुलता आयेगी। कैसे प्रयास करेंगे? सम्पूर्ण हृदय से प्रयास करेंगे। ऐसा करने से ही व्याकुलता आयेगी। अधिकांशत: जप-ध्यान में बैठने पर अनजाने में कितना समय चला जाता है। समय का कितना अपव्यय होता है।

– महाराज ! निर्धारित समय में निश्चित संख्या में जप करने की चेष्टा करने से क्या समय का सदुपयोग नहीं होता है?

महाराज – कई प्रकार से सदुपयोग होता है। असली बात है सजग रहना। सजग रहने का प्रयास करने से कई प्रकार से सदुपयोग हो सकता है। दो घण्टे आसन पर बैठने से भी कुछ नहीं होगा, सचेत रहना होगा। हमलोग कहते हैं कि समय नहीं मिलता है। जबकि हमलोगों का कितना समय अनजाने में बीता जा रहा है। हमलोगों के सजग नहीं रहने के कारण कितना समय व्यर्थ चला जाता है। क्या हमलोग अपने समय का सदुपयोग कर रहे हैं? समय का कितना अपव्यय हो रहा है, क्या हमलोग उसका हिसाब रख रहे हैं? क्या हमलोग मन को एक चिन्तन में लगाये रखते हैं?

– महाराज ! किसके चिन्तन में हमलोग मन को लगाये रखेंगे?

महाराज – एक चिन्तन करना, अर्थात् हमलोगों ने अपने जीवन का एक लक्ष्य निर्धारित किया है। क्या हमलोग अपना सम्पूर्ण समय, सर्वदा सारा प्रयास उसी लक्ष्य की ओर अग्रसर होने के लिये कर रहे हैं? सोचकर देखो। सभी अपने-अपने जीवन के अतीत की ओर देखो। कितना समय व्यर्थ चला गया है, कितना समय नष्ट किया है। केवल नष्ट किया है, ऐसी बात नहीं है, अभी नष्ट कर रहे हैं। विचार कर देखो। जीवन का एक उद्देश्य निर्धारित करने में ही कितने वर्ष लग गये। ऐसा लक्ष्य निर्धारित करने के बाद भी क्या हम उस उद्देश्य की ओर आगे बढ़ने के लिये प्रयास कर रहे हैं? जो कुछ हम प्रयास कर रहे हैं, उसमें भी मन इधर-उधर चला जाता है। सीधे मार्ग पर नहीं जा पा रहे हैं? उसके कारण एक मील के मार्ग को पार करने में दस मील के मार्ग का समय लग रहा है और उससे मन का अपव्यय हो रहा है। हम लोग यहाँ पर यह करने तो नहीं आये हैं। हमें ईश्वर-दर्शन नहीं हो रहा है, उनकी ओर आगे नहीं बढ़ रहे हैं, तो क्या इसके लिए मन में दुख हो रहा है? **(क्रमश:)**

जैसे किसी कमरे का हजारों वर्षों का अन्धकार एक बार एक दियासलाई जलाने से ही दूर हो जाता है, उसी प्रकार जीव के जन्म-जन्मान्तर के पाप भगवान की एक कृपादृष्टि से ही दूर हो जाते हैं ।
– श्रीरामकृष्ण परमहंस

दूसरों का सम्मान करते हुए सेवा

स्वामी मेधजानन्द

एक बार ट्रेन की द्वितीय श्रेणी के डिब्बे में दो मित्र सफर कर रहे थे। ट्रेन में खाद्य-पदार्थ बेचने वाले, जूता-पॉलिश करने वाले, चैन-ताला ठीक करने वाले और पैसा माँगने वालों का ताँता लगा रहता है। एक जूता-पॉलिश करने वाला लड़का यात्रियों से जूता पॉलिश करने के लिए पूछ रहा था। उन दोनों मित्रों ने काले रंग के अच्छे जूते पहने हुए थे। उनमें से एक ने अपना जूता पॉलिश कराना चाहा। जब उसका जूता पॉलिश हो गया, तो उसने अपने मित्र से पूछा कि क्या वह भी पॉलिश कराना चाहता है। उसके मित्र ने मुँह बनाकर ना कह दिया। पहले मित्र ने जूते पॉलिश करने वाले को २० रुपए दिए। अब जिस मित्र ने जूता पॉलिश नहीं कराया था, वह बड़ी डींग हाँकने लगा। वह कहने लगा, ''मैं तो बचपन से प्रत्येक कार्य स्वयं ही करता हूँ। इस तरह पैसे बर्बाद करने की क्या आवश्यकता है, इत्यादि।'' पहले मित्र से रहा नहीं गया, उसने कहा, ''मैं भी सभी कार्य स्वयं अपने हाथों से करता हूँ। किन्तु प्रत्येक व्यक्ति की रोजी-रोटी भी होती है। जूता पॉलिश करने वाला लड़का भले ही गरीब है, किन्तु मेहनत करके अपनी रोजी-रोटी कमा रहा है। क्या इस बहाने हम उसकी थोड़ी-सी भी सहायता नहीं कर सकते? दूसरों के आत्म-सम्मान को बनाए रखकर भी सेवा की जा सकती है।''

कुछ लोगों की विचित्र मानसिकता होती है। सड़क के किनारे हाथ-गाड़ी वाला अथवा छोटी दुकान वाला हो, तो उससे इतना मोल-भाव करेंगे कि उससे खरीद कर मानो बहुत बड़ा उपकार कर रहे हों। वे ही लोग जब किसी बड़े रंगबिरंगे मॉल में जाते हैं, तो शायद वही वस्तु दुगुने-तिगुने भाव में खरीद कर लातें है और गर्व करते हैं कि इतनी बड़ी दुकान से खरीदकर लाए। हाँ, यह बात अवश्य है कि वस्तु की गुणवत्ता का अन्तर छोटी-बड़ी दुकानों में तदनुरूप होता है। किन्तु पार्टियों में, आमोद-प्रमोद करने में, खाने-पीने में अविवेकपूर्वक खर्च करने में लोगों को बिल्कुल झिझक नहीं होती, केवल गरीब को दो पैसे अधिक देने में उनका बटुआ सिकुड़ जाता है।

एकबार स्वामी विवेकानन्द ट्रेन से यात्रा कर रहे थे। एक निर्धन मुसलमान फेरीवाला उबले हुए चने बेचता हुआ उनके डिब्बे में सवार हुआ। स्वामीजी ने उसे देखते ही अपने साथ के ब्रह्मचारी से चने का गुणगान शुरू कर दिया। वे बोले, ''देखो, चना व्यक्ति को बलवान बनाता है।'' इसके बाद वे फेरीवाले की ओर इंगित करते हुए ब्रह्मचारी से बोले, ''क्या उससे थोड़ा चना लिया जा सकता है?'' ब्रह्मचारी भी समझ गए कि स्वामीजी चने खाना नहीं, बल्कि उस गरीब व्यक्ति की सहायता करना चाहते हैं। उन्होंने चने लेकर उसे चार आने दे दिए। स्वामीजी की दृष्टि बड़ी तेज थी। उन्होंने ब्रह्मचारी से पूछा कि उसने कितने पैसे दिए। ब्रह्मचारी ने कहा, ''चार आने।'' स्वामीजी ने उनसे स्नेहपूर्वक कहा, ''मेरे बच्चे, यह पर्याप्त नहीं है। उसके घर में पत्नी और बच्चे हैं। उसे एक रुपया दे दो।'' चने बेचने वाले को एक रुपया दिया गया, परन्तु स्वामीजी ने चने नहीं खाए।

जब तक हमारा हृदय उदार नहीं होता, तब तक हम अपने देशवासियों के कल्याण के विषय में सोच नहीं सकते। साधारणत: व्यक्ति की उदारता उसके अपने स्वार्थ अथवा परिवार तक ही सीमित रहती है। त्याग और सेवा की भावना द्वारा हम अपने हृदय को विशाल कर सकते हैं। इससे देश का कल्याण तो होगा ही, किन्तु उससे अधिक लाभ सेवा करनेवाले को प्राप्त होता है ।

वर्तमान भारतीय सरकार ने स्टार्ट-अप प्रकल्प का शुभारम्भ किया है। इसका मुख्य उद्देश्य है कि प्रतिभाशाली किन्तु अल्प-संसाधन व्यक्तियों को अपना हुनर दिखाने का अवसर दिया जाए, जिससे देश में तकनीकी का विकास हो और रोजगार भी पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हो। हमारे देश में अनेक गुदड़ी के लाल हैं, जिनमें प्रतिभा की कोई कमी नहीं है, किन्तु कुछ कारणवश उन्हें अवसर नहीं मिल पाता। इसके अलावा जो अल्प-क्षमतावान व्यक्ति हैं, उन्हें भी आजीविका के साधन प्राप्त होने चाहिए। भूखे को रोटी देना अर्थात् अन्नदान को हमारे शास्त्रों में महादान कहा गया है, किन्तु इससे भी बड़ी सेवा यह है कि हम अल्प-संसाधन व्यक्तियों का सम्मान कायम रखते हुए उन्हें स्वावलंबी बनाने का प्रयत्न करें। ○○○

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (४)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भो को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः
स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रो
ह्यक्षरात् परतः परः।।२.१.२।।

परन्तु वह दिव्य पुरुष अमृत, अरूप, अनादि, हर प्राणी के भीतर तथा बाहर – समस्त जीवन के परे, समस्त मनों के अतीत, शुद्ध और यहाँ तक कि अक्षर से भी परे तथा सब कुछ के अतीत है।

एतस्माज्जायते प्राणो
मनः सर्वेन्द्रियाणि च।
खं वायुर्ज्योतिरापः
पृथिवी विश्वस्य धारिणी।।२.१.३।।

उन्हीं से प्राणतत्त्व उत्पन्न होता है। उन्हीं से मन उत्पन्न होता है, उन्हीं से सारी इन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं। उन्हीं से वायु, अग्नि, जल और समस्त प्राणियों को धारण करने वाली यह पृथ्वी पैदा हुई है।

अग्निर्मूर्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्यौ
दिशः श्रोत्रे वाग्-विवृताश्च वेदाः।
वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां
पृथिवी ह्येष सर्व-भूतान्तरात्मा।।२.१.४।।

आकाश मानो उसका सिर है; सूर्य और चन्द्र उसके नेत्र हैं, दिशाएँ उसके कान हैं, वेदों का अनन्त ज्ञान मानो उसकी वाणी की अभिव्यक्ति है। वायु उसके प्राण हैं। यह ब्रह्माण्ड उसका हृदय है; और यह संसार उसके चरण हैं। वह प्रत्येक प्राणी की चिरन्तन आत्मा है।

तस्मादृचः साम यजूंषि दीक्षा
यज्ञाश्च सर्वे क्रतवो दक्षिणाश्च।
संवत्सरश्च यजमानश्च लोकाः
सोमो यत्र पवते यत्र सूर्यः।।२.१.६।।

उन्हीं से विभिन्न वेद निकले हैं।

तस्माच्च देवा बहुधा सम्प्रसूताः
साध्या मनुष्याः पशवो वयांसि।
प्राणापानौ व्रीहियवौ तपश्च
श्रद्धा सत्यं ब्रह्मचर्यं विधिश्च।।२.१.७।।

उन्हीं से सारे देवता तथा 'साध्यगण' प्रकट हुए हैं। ये उत्कृष्ट प्रकार के मनुष्य होते हैं। 'साध्य' साधारण मनुष्यों से काफी ऊपर और देवताओं से काफी साम्य रखते हैं। उन्हीं से सारे मनुष्य, उन्हीं से सारे पशु, उन्हीं से सारे प्राण, उन्हीं से मन की सारी शक्तियाँ, उन्हीं से सम्पूर्ण सत्य और उन्हीं से ब्रह्मचर्य उत्पन्न हुए हैं।

सप्त प्राणाः प्रभवन्ति तस्मात्
सप्तार्चिषः समिधः सप्त होमाः।
सप्त इमे लोका येषु चरन्ति प्राणा
गुहाशया निहिताः सप्त सप्त।।२.१.८।।

उन्हीं से सात ज्ञानेन्द्रियों के अंग उत्पन्न हुए हैं, उन्हीं से इन्द्रियों के सात विषय और उन्हीं से इन्द्रियों की सात क्रियाएँ उत्पन्न हुई हैं, उन्हीं से वे सात लोक जन्मे हैं, जिनमें प्राण-संचार होता रहता है।

अतः समुद्रा गिरयश्च सर्वे-
ऽस्मात् स्यन्दन्ते सिन्धवः सर्वरूपाः।
अतश्च सर्वा ओषधयो रसश्च
येनैष भूतैस्तिष्ठते ह्यन्तरात्मा।।२.१.९।।

उन्हीं से ये समुद्र और महासागर उत्पन्न हुए हैं। समुद्र की ओर प्रवाहित होनेवाली सारी नदियाँ उन्हीं से पैदा हुई हैं; और उन्हीं से सारी वनस्पतियाँ तथा द्रव (तरल पदार्थ) उत्पन्न हुए हैं। वे ही [पदार्थो के] भीतर हैं और वे ही सभी प्राणियों की अन्तरात्मा हैं।

पुरुष एवेदं विश्वं
कर्म तपो ब्रह्म परामृतम्।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां
सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य।।२.१.१०।।

वह पुरुष – वह विराट् ही यह ब्रह्माण्ड है और वही त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) है। जो उसे जान लेता है, वह अपनी अन्तरात्मा को अज्ञान के बन्धन से छुड़ाकर मुक्त हो जाता है।[१]

द्वितीय मुण्डक

द्वितीय खण्ड

आविः सन्निहितं गुहाचरं नाम
महत् पदमत्रैतत् समर्पितम्।
एजत्-प्राणन्निमिषच्च यदेतज्जानथ सदसद्वरेण्यं
परं विज्ञानाद् वरिष्ठं प्रजानाम्।।२.२.१।।

वे ज्योतिर्मय हैं। वे प्रत्येक मनुष्य की अन्तरात्मा में हैं। उन्हीं से सारे नाम तथा रूप प्रकट हुए हैं, उन्हीं से सारे जीव और मनुष्य हुए हैं, वे ही सर्वोच्च हैं। जो उन्हें जान लेता है, वह मुक्त हो जाता है।

उन्हें जाना कैसे जाय?

धनुर्गृहीत्वौपनिषदं महास्त्रं
शरं ह्युपासा-निशितं सन्धयीत।
आयम्य तद्भावगतेन चेतसा
लक्ष्यं तदेवाक्षरं सोम्य विद्धि।।२.२.३।।

उपनिषद् अर्थात वेदान्त ज्ञान का यह धनुष उठाओ; उस धनुष पर उपासना के तीक्ष्ण बाण का सन्धान करो; अब उस धनुष [प्रत्यंचा] को खींचा कैसे जाय – मन को उन्हीं के आकार में ढालकर, मैं वही हूँ, यह जानकर। इस प्रकार उस पर प्रहार करो। इस तीर [उपासना] से ब्रह्म पर प्रहार करो।

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।२.२.४।।

ॐ धनुष है। मनुष्य का मन तीर है। ब्रह्म वह लक्ष्य है, जिस पर हम प्रहार करना चाहते हैं। मन की एकाग्रता के द्वारा इस लक्ष्य का भेदन करना होगा। और जब तीर लक्ष्य पर लगता है तो उसके भीतर प्रविष्ट होकर उसके साथ एकत्व को प्राप्त कर लेता है; उसी प्रकार यह आत्मारूपी तीर अपने लक्ष्य की ओर चलाया जाता है, ताकि वह उसके साथ एकत्व को प्राप्त कर ले – उस लक्ष्य के साथ, जिसमें द्युलोक, पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष स्थित हैं और जिसमें मन तथा सारे प्राण स्थित हैं।

यस्मिन् द्यौः पृथिवी चान्तरिक्षम्
ओतं मनः सह प्राणैश्च सर्वैः।
तमेवैकं जानथ आत्मानमन्या
वाचो विमुञ्चथामृतस्यैष सेतुः।।२.२.५।।

उपनिषदों में कुछ ऐसे मंत्र हैं, जिन्हें महावाक्य कहा जाता है और जिनका हमेशा उल्लेख तथा जिन्हें उद्धृत किया जाता है। उसी 'एक' आत्मा में – सारे लोक समाहित हैं। अन्य सभी बातों की क्या उपयोगिता? एकमात्र उन्हीं को जानो। यह जीवन के ऊपर बना वह सेतु है, जिससे होकर सर्वात्मा (अमृतत्व) तक पहुँचा जा सकता है।[२]

संसार में यदि कोई ज्ञान महत्त्वपूर्ण या उपयोगी है, तो वह यही कि सारी सांसारिक जानकारियाँ तथा गतिविधियाँ निरर्थक हैं। परन्तु बहुत थोड़े लोग ही यदा-कदा इसे जान सकेंगे। 'तमेव एकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ – उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो।' इस संसार में इधर-उधर भटकने के बाद हमें एकमात्र इसी ज्ञान की प्राप्ति होती है। हमारा एकमात्र कर्तव्य है कि हम हर व्यक्ति को पुकार कर कहें – 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत – उठो, जागो, और लक्ष्य को पाये बिना रुको नहीं।'[३]

इहलोक तथा परलोक – कहीं भी सुख पाने का विचार त्याग दो और केवल परमात्मा तथा सत्य की खोज करो। हम इस जगत् में भोग के लिए नहीं, अपितु सत्य की प्राप्ति के लिये आये हैं। भोग को पशुओं के लिए छोड़ दो, क्योंकि हम लोग कभी उनके समान भोग-सुख नहीं पा सकते। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है; और उसे मृत्यु पर विजय पाने अर्थात् प्रकाश की उपलब्धि कर लेने तक संघर्ष करते रहना चाहिए।

ऐसी व्यर्थ की बातों में अपना जीवन नष्ट मत करो, जिनसे कोई फल नहीं निकलता। समाज तथा लोगों के मत को महत्त्व देना एक तरह की मूर्तिपूजा है। आत्मा में लिंग, देश, स्थान या काल का कोई भेद नहीं होता।... निरन्तर अपने स्वरूप का चिन्तन करो। अन्धविश्वासों से मुक्त हो जाओ। अपनी स्वयं की हीनता में विश्वास की भ्रान्ति से स्वयं को सम्मोहित मत करो। जब तक तुम्हें यथार्थ रूप से परमात्मा के साथ अपनी अभिन्नता की अनुभूति न हो जाय, तब तक दिन-रात स्वयं को अपने स्वरूप की याद दिलाते रहो।[४] **(क्रमशः)**

१. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३७-३८

२. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३८

३. वही, खण्ड ५, पृ. ३६३

४. वही, खण्ड ४, पृ. ८०

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (८)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

किन्तु स्थिति कुछ दिनों तक वैसी ही बनी रही। इसलिए स्वामीजी ने गुडविन से कहा, ''शरत् अमेरिका जा रहा है। तुम उसके साथ जाओ। वह अमेरिका में नया है और वहाँ के रीति-रिवाज से अनभिज्ञ है। यदि तुम उसके साथ रहते हो, तो उसके लिए बहुत सहायता होगी।'' गुडविन ने कहा कि अमरिका में उसकी स्वयं की रोजी-रोटी की कोई व्यवस्था नहीं है। स्वामीजी ने कहा, ''तुम्हें इस विषय में चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं है, वह मैं देख लूँगा।''

अमेरिका जाने के विषय में गुडविन के मन में कुछ दुविधा थी। वे स्वामीजी का संग छोड़ना नहीं चाहते थे। इसके अलावा स्वामीजी और गुडविन स्वयं भी अपने बारे में यही सोचते थे कि उनकी प्रतिभा को अन्य क्षेत्रों में उपयोग किया जा सकता है। श्रीमती ओली बुल को ४ जून के पत्र में गुडविन लिखते हैं, ''मेरी तरह स्वामीजी भी यही मानते हैं कि यहाँ रहकर मैं अपना समय नष्ट कर रहा हूँ और अमेरिका जाकर बेहतर काम कर सकता हूँ। उन्होंने दो-तीन बार अपनी इच्छा व्यक्त की है कि अमेरिका से एक पत्रिका आरम्भ की जाए, जिससे लोग जुड़ सकें और उन्हें वेदान्त अध्ययन करने में भी सहायता प्राप्त हो। मैंने इस विषय में अच्छी तरह सोचा है और इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि मेरा कार्य इसी क्षेत्र में है।'' (उल्लेखनीय है कि स्वामीजी ने भी श्रीमती ओली बुल को गुडविन द्वारा अमेरिका में पत्रिका आरम्भ करने के विषय में लिखा था, किन्तु इस विषय में कुछ हो नहीं सका।) महेन्द्रनाथ के अनुसार गुडविन की वास्तव में अमेरिका जाने की इच्छा नहीं थी, किन्तु स्वामीजी ने उन्हें आग्रह किया और गुडविन ने अपने गुरु की आज्ञा स्वीकार की।

स्वामीजी की बड़ी इच्छा थी कि महेन्द्रनाथ भी स्वामी सारदानन्द और गुडविन के साथ अमेरिका जाएँ, किन्तु महेन्द्रनाथ ने उनकी बात नहीं मानी। इसके अलावा स्वामीजी ने महेन्द्रनाथ की वकील बनने की बात का घोर विरोध किया। स्वामीजी चाहते थे कि महेन्द्रनाथ अमेरिका जाकर इलेक्ट्रीकल इंजीनियरिंग पढ़ें। उनका मानना था कि इस विषय में प्रवीणता अर्जित कर महेन्द्रनाथ भारत का यथार्थ कल्याण कर सकेंगे। गुडविन नें भी महेन्द्रनाथ को मनाने का प्रयत्न किया। महेन्द्रनाथ कहते हैं, ''गुडविन नें मुझे साथ ले जाने का बहुत प्रयत्न किया।'' कभी मीठी बातें कहकर, कभी डाँट-डपटकर, कभी मजाक में अथवा कभी चिढ़ाकर गुडविन ने महेन्द्रनाथ का मन परिवर्तन करने का प्रयत्न किया। गुडविन ने कहा, ''यदि तुम यहाँ रहोगे, तो मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। चलो, नए देश चलो और देखो वहाँ क्या होता है...'' किन्तु महेन्द्रनाथ नहीं माने और लंदन में ही रहे।

गुडविन उत्साही और प्रसन्न रहते थे। उन्हें विनोद करना बहुत पसन्द था। अमेरिका जाने के पहले यह घटना घटी, ''गुडविन ने स्वामीजी का दिया हुआ (गले से लेकर घुटनों तक) कुर्ता पहना। स्वामी सारदानन्द ने उनके सिर पर पगड़ी बाँध दी। गुडविन ने जब स्वयं को दर्पण में देखा कि वे भारतीय के समान दिख रहे हैं, तो बहुत प्रसन्न हुए। अचानक उन्हें स्मरण हुआ कि वे लंदन छोड़ने वाले हैं और उन्हें अपने बूढ़ी मकान-मालकिन से मिलकर थोड़ी बहस करनी चाहिए। गुडविन मजाक करना पसन्द करते थे, इसलिए वे तलघर गए और मकान-मालकिन से कहा, 'मैं ज्ञानी हूँ ज्ञानी, भक्त नहीं !' पहले तो वे गुडविन को पहचान नहीं सकीं। उन्हें थोड़ा खिझाने के बाद गुडविन वापस आ गए।''

गुडविन और स्वामी सारदानन्द २७ जून, १८९६ को समुद्री मार्ग से अमेरिका के लिए रवाना हुए। स्वामी सारदानन्द जी के प्रति गुडविन का बहुत आदर था और वे उनकी प्रशंसा करते थे। पाश्चात्य देश में उनकी सफलता के विषय में गुडविन पूर्णतया आश्वस्त थे। स्वामी सारदानन्द के विषय में गुडविन श्रीमती ओली बुल को १८ मई के पत्र में लिखते हैं, ''...वे त्यागी और विनम्र स्वभाव के हैं...और निस्सन्देह उन्होंने अपनी सम्पूर्ण ऊर्जा साक्षात्कार के लिए लगा दी है। मैं यह कहना चाहूँगा कि उन्होंने इस पथ पर वांछनीय प्रगति की है। वे संस्कृत विद्वान हैं और

स्वामी विवेकानन्द के समान अच्छी अंग्रेजी बोलते हैं। यद्यपि स्वामीजी के समान उन्हें वेदान्त का गहन ज्ञान है, किन्तु उनके समान तर्क-वितर्क करने में सक्षम नहीं लगते। राजयोग सिखाने में वे पूर्णतया समर्थ हैं। स्वामीजी के साथ वे छह वर्ष थे। वे कहते हैं कि शास्त्रज्ञान के लिए वे मुख्यत: स्वामीजी के ऋणी हैं। स्वामी सारदानन्द जी दस वर्ष से संन्यासी हैं। कुल मिलाकर कहा जाए, तो वे सज्जन पुरुष हैं। उनकी सन्निधि और उपस्थिति अधिकांशत: स्वामी विवेकानन्द के समान ही लाभप्रद लगती है। मुझे पूरा विश्वास है कि वे अपने प्रवचनों द्वारा सबके प्रियपात्र बनने में सफल होंगे।''

गुडविन जब अमेरिका में थे, तब स्वामीजी और उन्होंने पत्र-व्यवहार के द्वारा अपना घनिष्ठ सम्बन्ध बनाए रखा। २५ जुलाई को ओली बुल को लिखे पत्र में स्वामीजी उल्लेख करते हैं कि गुडविन ने उन्हें अच्छा पत्र लिखा। स्विट्जरलैण्ड से ८ अगस्त को स्वामीजी ने गुडविन को एक बहुत बड़ा पत्र लिखा। यह सचमुच में उत्कृष्ट पत्र है। इसमें विषय-वस्तु की विस्तारपूर्वक चर्चा के साथ ही आत्मीयता की भावना भी अभिव्यक्त होती है। अमेरिका में वेदान्त भावधारा से जुड़े गुडविन एवं अन्य व्यक्तियों ने स्वामीजी से कृपानन्द के अनुचित व्यवहार के विषय में चिन्ता जतायी थी। इसलिए पत्र में कृपानन्द के विषय में भी स्वामीजी ने लिखा था, ''कृपानन्द के विषय में मुझे अनेक पत्रों से जानकारी प्राप्त होती रहती है। मुझे उसके लिए खेद है। उसके मस्तिष्क में अवश्य कुछ गलतफहमी होगी। उसे छोड़ दो। तुममें से किसी को भी उसके लिए परेशान होने की आवश्यकता नहीं।

''मुझे आघात पहुँचाने की किसी देव या दानव में शक्ति नहीं है। इसलिए निश्चिन्त रहो। अटल प्रेम और पूर्ण नि:स्वार्थता की ही सर्वत्र विजय होती है। यदि कोई कठिनाई आती है, तो हम वेदान्तियों को स्वयं से यह पूछना चाहिए कि 'मैं इसे क्यों देखता हूँ?' 'प्रेम के द्वारा मैं इस पर विजय क्यों नहीं पा सकता हूँ ?' ''

अमेरिका में स्वामी सारदानन्द जी की सफलता पर स्वामीजी आनन्द व्यक्त करते हैं, किन्तु साथ में यह भी कहते हैं कि असफलता भी अपरिहार्य है, ''महान कार्य में दीर्घ काल तक निरन्तर और महान प्रयत्न की आवश्यकता होती है। यदि कुछ लोग असफल भी हो जायँ, तो भी उसकी चिन्ता हमें नहीं करनी चाहिए। संसार का यह नियम ही है कि अनेक लोग नीचे गिरते हैं, कितने ही दु:ख आते हैं, कितनी ही भयंकर कठिनाइयाँ सामने उपस्थित होती हैं, स्वार्थपरता तथा अन्य बुराइयों का मानव हृदय में घोर संघर्ष होता है और तभी आध्यात्मिकता की अग्नि में इन सभी का विनाश होने वाला होता है। इस जगत् में श्रेय का मार्ग सबसे दुर्गम और पथरीला है। यह आश्चर्य की बात है कि अनेक लोग सफलता प्राप्त करते हैं, किन्तु कितने लोग असफल होते हैं, यह आश्चर्य नहीं। सहस्त्रों ठोकर खाकर चरित्र का गठन होता है।''

स्वामीजी संसार के स्वरूप की चर्चा करते हैं और कहते हैं कि 'मानवीय विकास' एक अनर्गल धारणा है। कोई भी प्रगति बिना तदनुरूप व्यतिक्रम के नहीं हो सकती। स्वामीजी कहते हैं, ''संसार में यदि कोई ज्ञान महत्त्वपूर्ण या उपयोगी है, तो वह यही कि सारी सांसारिक जानकारियाँ तथा गतिविधियाँ निरर्थक हैं। परन्तु बहुत थोड़े लोग ही यदा-कदा इसे जान सकेंगे। 'तमेव एकं जानथ आत्मानम् अन्या वाचो विमुञ्चथ – उस एक आत्मा को ही जानो और सब बातों को छोड़ दो।' इस संसार में इधर-उधर भटकने के बाद हमें एकमात्र इसी ज्ञान की प्राप्ति होती है। हमारा एकमात्र कर्तव्य है कि हम हर व्यक्ति को पुकार कर कहें – 'उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत – उठो, जागो, और लक्ष्य को पाये बिना रुको नहीं।' त्याग ही धर्म का सार है, और कुछ नहीं।''

गुडविन स्वभावत: ज्ञानप्रवण थे, इसलिए स्वामाजी ने उन्हें तदनुरूप लिखा। स्वामीजी ब्रह्म, जीव, ईश्वर और संसार के स्वरूप इत्यादि विषयों पर चर्चा करते हैं, ''केवल एक वही सत्ता अथवा ब्रह्म ही वास्तविक है। जब मैं सोचता हूँ कि 'मैं ब्रह्म हूँ', केवल तभी मेरा अस्तित्व होता है। ऐसा ही तुम्हारे और सब के बारे में है। विश्व की प्रत्येक वस्तु स्वरूपत: वही सत्ता है।''

पत्र के अन्त में स्वामीजी पुन: कृपानन्द के विषय में लिखते हैं, ''कुछ दिन पूर्व कृपानन्द को लिखने की मुझे अकस्मात् प्रबल इच्छा हुई। शायद वह दुखी था और मुझे याद करता होगा। इसलिए मैंने उसे सहानुभूतिपूर्ण पत्र लिखा। आज अमेरिका से खबर मिलने पर मेरी समझ में आया कि ऐसा क्यों हुआ। हिम-नदियों के पास से तोड़े हुए पुष्प मैंने उसे भेजे। कुमारी वाल्डो से कहना कि अपना आन्तरिक स्नेह प्रदर्शित करते हुए उसे कुछ धन भेज दें। प्रेम का कभी नाश नहीं होता। पिता का प्रेम अमर है,

सन्तान चाहे जो करे या जैसे भी हो। वह मेरा पुत्र जैसा है। अब वह दुख में है, इसलिए पहले के समान अथवा उससे भी अधिक वह मेरे प्रेम तथा सहायता का अधिकारी है।''

स्वामीजी का यह पत्र हर दृष्टि से परिपूर्ण था । निस्सन्देह गुडविन अपने प्रति स्वामीजी की आन्तरिक भावनाओं से अभिभूत हो गए होंगे। कृपानन्द की तरह गुडविन भी स्वामीजी के लिए पुत्र के समान थे।

गुडविन और स्वामी सारदानन्द २ जुलाई को न्यूयॉर्क बन्दरगाह पहुँचे। गुडविन ने तुरन्त स्वामी सारदानन्द की कैम्ब्रिज में ओली बुल की देखभाल में रहने की व्यवस्था कर दी। ओली बुल ने ही सुझाव दिया था कि स्वामी सारदानन्द जी अमेरिका स्थित ग्रीनेकर, मेन आएँ और वहाँ के प्रतिष्ठित ग्रीनेकर स्कूल ऑफ कर्म्परेटिव रिलीजन को सम्बोधित करें। यह ग्रीष्मकालीन शिविर था, जिसका मुख्य उद्देश्य सर्वधर्मसमभाव को व्यावहारिक जीवन में आचरण करना था। स्वामी सारदानन्द ने ७ जुलाई को ग्रीनेकर में 'वेदान्त दर्शन' पर व्याख्यान दिया। पाश्चात्य जगत में यही उनका प्रथम व्याख्यान था। दो सप्ताह के बाद उन्होंने ग्रीनेकर में कई कक्षाएँ लीं। उनकी ये कक्षाएँ और प्रथम व्याख्यान बहुत लोकप्रिय हुए। इसे देख गुडविन भी बहुत आनन्दित हुए।

इन दिनों का स्मरण करते हुए स्वामी सारदानन्द जी ने बाद में महेन्द्रनाथ दत्त से कहा था, ''किसी स्थान पर एक तंबू में बहुत बड़ी सभा थी। इतनी बड़ी सभा में मुझे बोलने का अभ्यास नहीं था और मैं थोड़ा घबराया हुआ था। गुडविन मेरे साथ था। वह दृढ़ व्यक्ति था और मुझे प्रोत्साहित कर रहा था। सचमुच उस दिन मैंने साहसपूर्वक बोला। सभी लोग मन लगाकर उत्सुकतापूर्वक सुन रहे थे। गुडविन आनन्द से फूला नहीं समा रहा था। उसने कहा कि मैं चण्डी और गीता के भाव में बोल रहा था।''

स्वामी सारदानन्द के आगमन से श्रीमती बुल ने अमेरिकी वेदान्त कार्य का पुनर्गठन सुगमतापूर्वक हो, इस विषय पर ध्यान दिया। सबसे महत्त्वपूर्ण मुद्दा वेदान्त सोसायटी ऑफ न्यूयॉर्क का था। वह केवल नाममात्र संस्था थी। यद्यपि इस संस्था की सदस्यता थी, किन्तु न इसका कोई प्रधान कार्यालय था और न ही प्रभारी। कार्य के पीछे विभिन्न उद्देश्य रहने के कारण सदस्यों के बीच सहयोग की अपेक्षा कलह अधिक था। इन परिस्थितियो में वेदान्त कार्य के प्रचार-प्रसार की बात तो दूर, उसका कुछ भी विकास नहीं हुआ। श्रीमती बुल गुडविन को न्यूयॉर्क वेदान्त कार्य का प्रभारी बनाना चाहती थीं। वेदान्त भावधारा के विकास के विषय में गुडविन भी श्रीमती बुल के विचारों से सहमत थे। यदि देखा जाए, तो गुडविन वस्तुत: उनके सहायक ही थे।

श्रीतमी बुल और गुडविन ने एक व्यापक प्रस्ताव तैयार किया। इसे बाद में 'ग्रीनेकर सर्कुलर' कहा जाने लगा। इसमें कहा गया था कि न्यूयॉर्क वेदान्त सोसायटी को रद्द कर दिया जाए और उसके स्थान पर 'संस्था रहित सहकारी कार्य' किया जाए।

सर्कुलर में ऐसा प्रस्ताव रखा गया था कि स्वामी सारदानन्द जी ग्रीनेकर कक्षाओं के उपरान्त न्यूयॉर्क में स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रारम्भ की गई वेदान्त कक्षाएँ शुरू करें। इसमें यह भी उल्लेख था कि संस्था के प्रधान कार्यालय की भी स्थापना वहीं की जाए। स्वामी सारदानन्द और गुडविन छोटे-से साधु निवास में रहेंगे । वहाँ पुस्तकालय और अध्ययन-कक्ष की भी व्यवस्था रहेगी। गुडविन स्वामी सारदानन्द जी के सहायक के अलावा पुस्तकालय का भी कार्य देखेंगे। **(क्रमशः)**

शेष भाग पृष्ठ ४५६ पर

शोर-गुल सुनकर शरत् महाराज कमरे से बाहर निकल आये। उन्होंने पूछा, ''क्या हुआ है?'' बाबूराम महाराज बोले, ''देखो न ! ये सारे शौचालय साफ कर आये हैं।'' शरत् महाराज ने सब सुना। अपराह्न में चाय के समय उन्होंने भंडारी को बुलाकर कहा, ''आज रात में सबके लिए हलुआ-पूरी बनाओ, मैं खर्च दूँगा।'' रात में खाने के समय शरत् महाराज ने स्वामी बोधानन्द एवं अन्य को दिखला कर कहा, ''इन लोगों के सम्मान में ही आज यह दावत दी जा रही है। ''

स्वामी सारादानन्द जी महाराज ने मेहतर के कार्य को भी मन्दिर के कार्य समान सम्मान प्रदान किया। सभी कार्य ठाकुर के हैं, यह घटना साक्ष्य रूप में सबको प्रेरित करती रहेगी। OOO

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२६)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

खेल का दूसरा नियम

पुनर्जन्म का सिद्धान्त – जो जन्म लेता है, वह अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता है। जो मरता है, उसका अवश्य जन्म होता है। यही जन्म-मृत्यु का नियम है और यही पुनर्जन्म का सिद्धान्त है। इसे गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने बहुत अच्छे ढंग से समझाया है। वे कहते हैं –

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि।।२/२७।।

अर्थात् जन्म लेने वाले की मृत्यु निश्चित है और मरे हुए का जन्म निश्चित है। इसलिये इस अपरिहार्य स्थिति में शोक करना उचित नहीं है।

जो मृत्यु को प्राप्त होता है, वह पंच महाभूतों से निर्मित शरीर है, किन्तु इसके अन्दर जो आत्मा है, वह अजर, अमर अविनाशी है। इस सिद्धान्त से ही दूसरा अटल सिद्धान्त मिलता है कि कभी कोई शरीर अमर नहीं हो सकता और कभी कोई आत्मा मर नहीं सकती। कई लोग कहते हैं कि हिमालय में योगी हजारों वर्षों से सदेह जी रहे हैं, तो यह बात सच नहीं है। हाँ, वे सूक्ष्म रूप में अवश्य विचरण कर रहे होते हैं। सिद्ध योगी कदाचित् अपनी सूक्ष्मदेह को टिकाये रखते हैं, परन्तु किसी की स्थूल देह सदा टिक नहीं सकती है। क्योंकि जो जन्म लेता है, उसकी मृत्यु भी निश्चित होती है। योगी या अवतार पुरुष अपनी आयु को कुछ दीर्घ कर सकते हैं। लेकिन कितना करेंगे? कुछ वर्ष तक करेंगे। अन्त में तो उन्हें भी शरीर छोड़ना ही पड़ता है। क्योंकि यह अटल नियम है। प्रसिद्ध पुराण कथा में सावित्री ने अपनी प्रार्थना द्वारा यमराज से सत्यवान को वापस प्राप्त किया था, पर कब तक? अन्त में सत्यवान और सावित्री दोनों को शरीर छोड़ना ही पड़ा। सबको इस नियम के अधीन रहना ही पड़ता है।

प्रार्थना के द्वारा कोई व्यक्ति छोटी आयु को भी लम्बा कर सकता है, पर उसे अमर नहीं बना सकता है। कुछ वर्ष पहले मध्य प्रदेश में एक घटना हुई थी। एक महिला के पति को मस्तिष्क में गाँठ हो गई थी। उसका ऑपरेशन करना था, जो कि घंटों चलता। डॉक्टर ऑपरेशन का खतरा नहीं लेना चाहते थे। ऑपरेशन के बाद भी उसके बचने की सम्भावना कम लग रही थी। परन्तु उस महिला को भगवान पर पूरी श्रद्धा थी। उसका सारा जीवन प्रार्थना में बीता था। उसने डॉक्टर को कहा, ''भगवान के साथ मैं यह अन्तिम खेल खेलना चाहती हूँ। आप ऑपरेशन कीजिये।'' मद्रास के वेलोर अस्पताल में उसके पति का ऑपरेशन हुआ। घंटों तक ऑपरेशन चलता रहा। सबको आश्चर्य हुआ, किन्तु वह ऑपरेशन सफल रहा और वह व्यक्ति ठीक हो गया। वह अभी जीवित है। डॉक्टरों को समझ में नहीं आया कि यह ऑपरेशन सफल कैसे हुआ? उन्होंने उसकी विडियो फिल्म बनाई थी, जिसे विदेशों में भेजा, तो विदेशी डॉक्टरों को भी आश्चर्य हुआ कि यह मनुष्य बचा कैसे? वह महिला सतत भगवान से प्रार्थना करती रही, यह उसी का परिणाम था। प्रार्थना से मृत्यु को टाला जा सकता है, आयु लम्बी की जा सकती है, पर हमेशा के लिए नहीं। उस व्यक्ति का जब समय आएगा, तब उसे शरीर छोड़ना ही पड़ेगा। आत्मा एक ही शरीर में नहीं रहती है। भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं –

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय
नवानि गृहणाति नरोऽपराणि।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णा-
न्यन्यानि संयाति नवानि देही।।२.२२।।

जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है, वैसे ही जीवात्मा पुराने शरीरों को त्यागकर दूसरे शरीरों को प्राप्त होती है। जीवात्मा को नयी-नयी देह अच्छी लगती है। इस जन्म के कर्म के अनुसार उसे नये जन्म में नयी देह मिलती है। यही जीवन और मृत्यु का नियम है। यदि परमात्मा स्वयं भी देह धारण करके पृथ्वी पर आते हैं, तो उन्हें भी इस नियम को स्वीकार करना पड़ता है। अर्थात् अपना कार्य सम्पन्न होने पर वे भी देह त्याग कर देते हैं।

आत्मा की कभी मृत्यु नहीं होती

देह की मृत्यु अनिवार्य है, लेकिन आत्मा को मृत्यु कभी भी स्पर्श नहीं कर सकती है, इसीलिए आत्मज्ञानी योगी मृत्यु से कभी विचलित नहीं होते हैं और देह में कभी

आसक्त नहीं होते हैं। उन्हें जीवन की लालसा नहीं होती है, वे नित्यमुक्त होते हैं। यदि कोई उनके शरीर की हत्या करने आए, तो भी वे विचलित नहीं होते हैं। बादशाह सिकन्दर को ऐसे एक नित्य मुक्त महात्मा का अनुभव हुआ था। जब वह विश्वविजय करने निकला था, तब उसके गुरु ने कहा था कि तू हिन्दुस्तान जा रहा है, तो वहाँ से किसी सच्चे महात्मा को लाना। हिन्दुस्तान में आने के बाद उसने ऐसे महात्मा की खोज की। उसने अपने मन्त्री को भेजकर एक महात्मा को बुलाया। उस महात्मा ने सिकन्दर के पास जाने से मना कर दिया, तो स्वयं सिकन्दर महात्मा के पास गया। उनको प्रणाम करके कहा, ''आप मेरे देश चलिये, मैं आपको अपार धन-सम्पत्ति दूँगा। आपको अब इस प्रकार दिगम्बर होकर जंगल में वृक्ष के नीचे नहीं रहना पड़ेगा। आपको मैं विशाल महल दूँगा।'' तब उस महात्मा ने कहा, ''मैं क्यों तुम्हारे साथ जाऊँ, मुझे यहाँ किस बात की कमी है? वृक्ष मुझे फल देते हैं। नदी मुझे पानी देती है, वस्त्रों की मुझे आवश्यकता नहीं। मैं सदैव आनन्द में हूँ।'' कभी किसी से ना नहीं सुनने का आदी सिकन्दर इस उत्तर को अपमान समझकर आग-बबूला हो गया। उसने महात्मा को मारने के लिये म्यान में से तलवार निकाल ली। यह देखकर महात्मा ने सहजता और निर्भयता से कहा, ''तू किसे मारेगा? मैं तो वह अजर अमर आत्मा हूँ, जिसे शस्त्र छेद नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, पानी गला नहीं सकता, पवन सुखा नहीं सकता। वह नित्य सर्वव्यापक, स्थिर, अचल और अनादि है। मैं बुद्धि नहीं हूँ, चित्त नहीं हूँ, अहंकार नहीं हूँ, मैं चिदानन्द रूप शिव हूँ। तू मुझे क्या मार सकता है?'' आत्मा से निकली ऐसी वाणी कभी सिकंदर ने नहीं सुनी थी, सुनकर वह हतप्रभ हो गया, उसकी तलवार ठहर गई। तभी महात्मा ने कहा, ''मूर्ख, तू स्वयं ही अपने देश में नहीं पहुँच सकेगा, तू मुझे क्या ले जायेगा?'' सिकंदर महात्मा को प्रणाम करके वहाँ से चल पड़ा। सच में वह अपने देश नहीं पहुँच सका, रास्ते में ही उसकी मृत्यु हो गई, तब उसे हिन्दुस्तान के साधुओं की महानता समझ में आयी होगी। इस प्रकार शरीर तो नश्वर है ही, किन्तु आत्मा अमर है। अत: आत्मज्ञानी निर्भय रहता है, वह मृत्यु से नहीं डरता, क्योंकि वह जानता है कि वह स्वभावत: अमर है। **(क्रमश:)**

पुस्तक समीक्षा

स्वामी विवेकानन्द – प्रसिद्ध दार्शनिक : अनजान कवि

लेखिका – राधिका नागरथ, संवाददाता, हिन्दुस्तान टाइम्स और सलाहकार सम्पादिका, एक्सप्रेस इंडियन डॉट कॉम न्यूज पोर्टल

अनुवाद – महेन्द्र नारायण सिंह यादव

प्रकाशक – प्रभात प्रकाशन, ४/१९ आसफ अली रोड, नई दिल्ली – ११०००२

ई मेल –prabhatbooks@gmail.com

पृष्ठ – २१५, मूल्य-३००/-

स्वामी विवेकानन्द आध्यात्मिक विश्व-गगन-मंडल के प्रखर आदित्य हैं । उनके व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष हैं । उनके महान व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों को देश-विश्व के महान रचनाकारों और मनीषियों ने अपनी तीक्ष्ण मेधा के द्वारा प्रतिपादित किया है । उसी शृंखला में श्रीमती राधिका नागरथ जी ने 'स्वामी विवेकानन्द : प्रसिद्ध दार्शनिक और अनजान कवि' नामक पुस्तक की रचना की है । स्वामी विवेकानन्द एक सर्वत्यागी संन्यासी, आध्यात्मिक पुरुष, राष्ट्रभक्त और दार्शनिक थे, इसे सभी जानते हैं, किन्तु वे एक कवि थे, इसे बहुत कम लोग जानते हैं । उनका काव्य सौष्ठव, उनकी कविता की रमणीयता और मार्मिकता से बहुत से लोग अपरिचित हैं । यह पुस्तक इसी क्षति की पूर्ति करती है और समाज के समक्ष उनके इस व्यक्तित्व के महत्त्वपूर्ण पक्ष को अभिव्यक्त करती है । मैथ्यू अर्नाल्ड ने कहा था, ''विवेकानन्द की कविता सच्ची कविता है, जिसकी अवधारणा और रचना उनकी आत्मा में की गई थी ।'' सैन फ्रांसिस्को की ब्लांश पार्टिंगटन लिखती हैं, ''स्वामी विवेकानन्द एक शिक्षक दार्शनिक से कहीं अधिक कविता के देश के कवि हैं ।''

इस पुस्तक में कुल ६ अध्याय हैं, जिनमें उनके दार्शनिक और प्रकृतिवादी कवि, अनासक्ति और परित्याग की खोज – भक्तिकाव्य का एक दृष्टिकोण, तत्त्वमीमांसावादी काव्य, अद्वैतवाद और पारम्परिक कविता और वर्तमान में उनके सन्देशों की प्रासंगिकता पर लेखिका द्वारा गहन चिन्तन और विश्लेषण किया गया है । एक स्थान पर वे लिखती हैं – ''विवेकानन्द की कविता वैदिक ज्ञान और बौद्ध हृदय का संगम है । स्वामी विवेकानन्द जी अनन्त के चित्रण को उत्कृष्ट काव्य मानते हैं । स्वामीजी की कविता – 'काली माता', 'संन्यासी का गीत', 'मेरा खेल समाप्त हुआ', 'गाता हूँ गीत मैं तुम्हें ही सुनाने को' आदि गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन करते हैं । पुस्तक पठनीय, चिन्तनीय और संग्रहणीय है । ○○○

सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज का छत्तीसगढ़-प्रवास

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष स्वामी गौतमानन्दजी महाराज ने ५ जून से ९ जून तक छत्तीसगढ़ में प्रवास किया तथा रायपुर और नारायणपुर में भक्तों को दीक्षा प्रदान की ।

रायपुर आश्रम में मुख्यमन्त्रीजी का आगमन

९ जून, २०१८ को छत्तीसगढ़ के मुख्यमन्त्री श्री रमन सिंह जी ने रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के सचिव स्वामी सत्यरूपानन्द जी से भेंट की और छत्तीसगढ़ राज्य में संचालित सेवाकार्यों की जानकारी दी तथा नई योजनाओं पर चर्चा की ।

विवेकानन्द चेयर की स्थापना – बस्तर विश्वविद्यालय, जगदलपुर में १७ मार्च को १ बजे से ४ बजे तक विश्वविद्यालयीय छात्र-छात्राओं के लिये व्यक्तित्व-विकास पर रामकृष्ण मिशन, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और दुर्गा महाविद्यालय, रायपुर के प्रो. सुभाष चन्द्राकर जी ने व्याख्यान दिये । विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ शैलेन्द्र कुमार सिंह जी ने विश्वविद्यालय में स्वामी विवेकानन्द चेयर और डॉ. अम्बेडकर चेयर की स्थापना की घोषणा की ।

कोटा (राजस्थान) – रामकृष्ण भक्त मंडली, कोटा के द्वारा ३ अप्रैल, २०१८ को राम मंदिर हॉल में सत्संग का आयोजन किया गया, जिसमें रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने प्रवचन दिये । सत्संग संयोजक श्री राजेश गुप्ता जी ने सभा का संचालन और धन्यवाद दिया ।

४ अप्रैल, २०१८ को कोटा जिले के सांगोद में स्थित **राजकीय औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र (आई.टी.आई)** में 'शिक्षक सेमीनार' का आयोजन हुआ, जिसमे 'शिक्षकों का कर्तव्य एवं दायित्व' पर स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अव्ययात्मानन्द जी ने व्याख्यान दिये । इसमें पाँच संस्थानों के ६२ शिक्षकों ने भाग लिया । इस अवसर पर (सी.एफ. सी.एल) के वरिष्ठ प्रबन्धक श्री विकास भाटिया एवं अक्षय अनन्त जी उपस्थित थे । आयोजन और संचालन सांगोद आईटीआई के संचालक श्री राजेश गुप्ता जी ने किया ।

श्रीरामकृष्ण आश्रम, बीकानेर में ६ अप्रैल को शाम ६ बजे स्वामी प्रपत्त्यानन्द और स्वामी अव्ययात्मानन्द के प्रवचन हुए । आयोजक आश्रम के सचिव श्री अर्जुन सिंह जी थे ।

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ भावप्रचार परिषद की वार्षिक सभा रामकृष्ण कुटीर, अमरकंटक में सम्पन्न हुई

मध्यप्रदेश-छत्तीसगढ़ रामकृष्ण-विवेकानन्द-भावप्रचार परिषद की वार्षिक सभा १ और २ मई, २०१८ को रामकृष्ण कुटीर, अमरकंटक में सम्पन्न हुई । सभा को स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी भवेशानन्द ने सम्बोधित किया । परिषद के संयोजक स्वामी तन्मयानन्द जी ने सबको धन्यवाद दिया ।

रामकृष्ण कुटीर, अमरकंटक ने ३० अप्रैल को ३९वाँ स्थापना दिवस मनाया, जिसमें विभिन्न स्थानों से लगभग ७० भक्तों ने भाग लिया । शाम की सार्वजनीन सभा में स्वामी व्याप्तानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द ने प्रवचन दिये । आश्रम के सचिव स्वामी विश्वात्मानन्द जी ने अतिथि सन्तों और भक्तों का स्वागत भाषण दिया और आश्रम का प्रतिवेदन पढ़ा । श्री हिमाचल मढ़रियाजी ने धन्यवाद ज्ञापन किया ।

विवेकानन्द विद्यापीठ, कोटा, रायपुर में २९ और ३० मार्च, २०१८ को 'विवेकानन्द युवा सम्मेलन' का आयोजन हुआ, जिसमें स्वामी सत्यरूपानन्द, स्वामी अव्ययात्मानन्द, स्वामी प्रपत्त्यानन्द, स्वामी राघवेन्द्रानन्द, स्वामी निर्विकारानन्द, स्वामी ज्ञानगम्यानन्द, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो. अवधेश प्रधान सिंह, रायपुर सम्भाग के आयुक्त श्री ब्रजेशचन्द्र मिश्र, हरिभूमि के प्रधान सम्पादक श्री हिमांशु द्विवेदी, र.वि.के कुलपति डॉ. शिवकुमार पाण्डेय और विद्यापीठ के सचिव डॉ. ओमप्रकाश पाण्डेय ने विभिन्न सत्रों में युवकों को सम्बोधित किया । लगभग ५०० युवकों ने भाग लिया । ○○○